Bhakt Narsing Mehta

(Hindi)

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

भक्त नरसिंह मेहता

महात्माकी कृपा

पुण्यभूमि आर्यावर्तके सौराष्ट्र-प्रान्तमें जीर्णदुर्ग नामक एक अत्यन्त प्राचीन ऐतिहासिक नगर है, जिसे आजकल जूनागढ़ कहते हैं। भक्तप्रवर श्रीनरसिंह मेहताका जन्म लगभग सं० १४७० में इसी जूनागढ़* में एक प्रतिष्ठित नागर ब्राह्मण-परिवारमें हुआ था। उनके पिताका नाम था कृष्णदामोदरदास तथा माताका नाम था लक्ष्मीगौरी। उनके एक और बड़े भाई थे, जिनका नाम था वणसीधर या वंशीधर। अभी वंशीधरकी उम्र २२ वर्ष और नरसिंहरामकी ५ वर्षके लगभग थी कि उनके माता-पिताका देहान्त हो गया और उसके बाद नरसिंहरामका लालन-पालन बड़े भाई तथा दादीने किया। दादीका नाम था जयकुँवरि।

नरसिंहराम बचपनसे गूँगे थे; प्रायः आठ वर्षकी उम्रतक उनका कण्ठ नहीं खुला। इस कारण लोग उन्हें 'गूँगा' कहकर पुकारने लगे। इस बातसे उनकी दादी जयकुँवरिको बड़ा क्लेश होता था। वह बराबर इस चिन्तामें रहती थी कि मेरे पौत्रकी जबान कैसे खुले। परंतु मूकको वाचाल कौन बनावे, पंगुको गिरिवर लाँघनेकी शक्ति कौन दे? जयकुँवरिको पूरा विश्वास

---

* कुछ लोगोंका मत है कि जूनागढ़के पास ही 'तलाजा' नामक गाँवमें नरसिंह मेहताका जन्म हुआ था और पीछे उनका परिवार जूनागढ़में आकर रहने लगा था। इसकी पुष्टि स्वयं नरसिंह मेहताके एक पदसे भी होती है, जिसमें वह कहते हैं—

'गाम तलाजामां जन्म मारो थयो, भाभीए मूरख कही मेहेणुं दीधूं ;
वचन वाग्युं एक अपूज शिवलिंगनुं वनमांहे जइ पूजन कीधुं।'

था, ऐसी शक्ति केवल एक परमपिता परमेश्वर ही है; उनकी दया होनेपर मेरा पौत्र भी तत्काल वाणी प्राप्त कर सकता है और साथ ही यह भी उसे विश्वास था कि उन दयामय जगन्नाथकी कृपा साधारण मनुष्योंको उनके प्रिय भक्तोंके द्वारा ही प्राप्त हुआ करती है। अतएव स्वभावतः ही उसमें साधु-महात्माओंके प्रति श्रद्धा और आदरका भाव था। जब और जहाँ उसे कोई साधु-महात्मा मिलते, वह उनके दर्शन करती और यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक सेवा भी करती।

कहते हैं, श्रद्धा उत्कट होनेपर एक-न-एक दिन फलवती होती ही है। आखिर जयकुँवरिकी श्रद्धा भी पूरी होनेका सुअवसर आया। फाल्गुन शुक्ल पंचमीका दिन था। ऋतुराजका सुखद साम्राज्य जगत्‌भरमें छा रहा था। मन्द-मन्द वसन्तवायु सारे जगत्‌के प्राणियोंमें नवजीवनका संचार कर रहा था। नगरके नर-नारी प्रायः नित्य ही सायंकाल हाटकेश्वर महादेवके दर्शनके लिये एकत्र हुआ करते; स्त्रियाँ मन्दिरमें एकत्र होकर मनोहर भजन तथा रासके गीत गाया करतीं। नित्यकी तरह उस दिन भी खासी भीड़ थी। जयकुँवरि भी नातीको साथ लेकर हाटकेश्वर महादेवके दर्शनको गयी। दर्शन करके लौटते समय उसकी दृष्टि एक महात्मापर पड़ी, जो मन्दिरके एक कोनेमें व्याघ्राम्बरपर पद्मासन लगाये बैठे थे। उनके मुखसे निरन्तर 'नारायण-नारायण' शब्दका प्रवाह चल रहा था। उनका चेहरा एक अपूर्व ज्योतिसे जगमगा रहा था। देखनेसे ही ऐसा मालूम होता था जैसे कोई परम सिद्ध योगी हों। उनकी दिव्य तपोपलब्ध प्रतिभासे आकृष्ट होकर जयकुँवरि भी अपने साथकी महिलाओंके संग उनके दर्शन करनेके लिये गयी। उसने दूरसे ही बड़े आदर और भक्तिके साथ महात्माजीको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर विनती की—

'महात्मन्! यह बालक मेरा पौत्र है; इसके माता-पिताका देहान्त हो चुका है। प्राय: आठ वर्षका यह होने चला, पर कुछ भी बोल नहीं सकता। इसका नाम नरसिंहराम है; परंतु सब लोग इसे गूँगा कहकर ही पुकारते हैं। इससे मुझे बड़ा क्लेश होता है। महाराज! ऐसी कृपा कीजिये कि इस बालककी वाणी खुल जाय।'

गोस्वामी तुलसीदासने ठीक ही कहा है कि—

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

महात्माओंका हृदय मक्खनके समान होता है। इतना ही नहीं, माखन तो केवल अपने ही तापसे द्रवित होता है और सत्पुरुष दूसरोंके तापसे द्रवीभूत हो जाते हैं। फिर ये महात्मा तो दैवी शक्तिसे सम्पन्न थे और मानो उस वृद्धाकी मनःकामना पूरी करनेके ही लिये ईश्वरद्वारा प्रेरित होकर वहाँ आये थे। उन्होंने बालकको अपने पास बिठाया और उसे एक बार ध्यानपूर्वक देखकर कहा—'यह बालक तो भगवान्का बड़ा भारी भक्त होगा।' इतना कहकर उन्होंने अपने कमण्डलुसे जल लेकर मार्जन किया और बालकके कानमें फूँक देकर कहा—'बच्चा! कहो ***राधे कृष्ण, राधे कृष्ण!'***

बस, महात्माकी कृपासे जन्मका गूँगा बालक ***'राधे कृष्ण, राधे कृष्ण'*** कहने लगा। उपस्थित सभी मनुष्य आश्चर्यचकित हो गये और महात्माजीकी जय-जयकार पुकारने लगे।

गूँगे पौत्रके मुखसे भगवान्का नामोच्चार सुनकर वृद्धा जयकुँवरिको कितनी प्रसन्नता हुई होगी, इसे कौन बता सकता है? उसने महात्माजीको बार-बार प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बड़ी दीनताके साथ प्रार्थना की—'महाराज! आपकी ही कृपासे मेरा पौत्र अब बोलने लगा। मेरा बड़ा पौत्र

राज्यमें थानेदारके पदपर है। आप मेरे घरपर पधारनेकी कृपा करें और मुझे भी यथाशक्ति सेवा करनेका सुअवसर प्रदान करें। आपकी चरणरजसे मेरा घर भी पवित्र हो जायगा।'

परंतु सच्चे महात्मा सेवा या पुरस्कारके भूखे नहीं होते। वे तो सदा स्वभावसे ही लोक-कल्याणकी चेष्टा करते रहते हैं। महात्माजीने प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया—'माता! मुझे कोई योगबल या तपोबल नहीं प्राप्त है। इस संसारमें जो कुछ होता है, सब केवल प्रभुकी कृपासे ही होता है। उन महामहिम परमात्माकी माया 'अघटन-घटनापटीयसी' कहलाती है। अत: मेरा उपकार भूलकर उन परमात्माके ही प्रति कृतज्ञता प्रकट करो और उनका नामस्मरण, भजन-पूजन करो। मैं इस तरह अकारण अथवा प्रतिष्ठाके लिये किसी गृहस्थके घरपर नहीं जाता। तुम घरपर जाकर प्रभुका भजन करो, तुम्हारा कल्याण होगा। मैं तो अब गिरनारपर जाता हूँ और तुम्हारे इच्छानुसार यह कह जाता हूँ कि थोड़े ही दिनोंमें एक कुलवती सुरूपा कन्यासे इसका विवाह भी हो जायगा।'

जयकुँवरिको महात्माजीके सामने विशेष आग्रह करनेका साहस न हुआ। पौत्रके साथ प्रसन्नवदन अपने घर चली आयी और उसने बड़े पौत्र वंशीधरसे महात्माजीका चमत्कार कह सुनाया। वंशीधरने महात्माजीके दर्शन करनेकी लालसासे सिपाहियोंद्वारा बड़ी खोज करायी; परंतु कहीं उनका पता न लगा। लोगोंका विश्वास है कि अपने भावी भक्त नरसिंह मेहताको इष्टमन्त्र तथा वाचा देनेवाले सिद्धपुरुष स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही थे।

कुटुम्बविस्तार

जिस समयकी यह बात है, उस समय भारतका सम्राट् हुमायूँ था और उसके अधीन जूनागढ़का शासक एक क्षत्रिय राजा था, जिसका नाम था राव माण्डलीक। राजा हुमायूँके अधीन होनेपर भी राज्यकार्यमें वह सब तरहसे स्वाधीन था, केवल उसे एक नियत करमात्र अदा करना पड़ता था। सरकारी काम-काजमें उन दिनों नागर-जाति अत्यन्त प्रवीण थी। राज्यके प्रधानमन्त्रीसे लेकर एक साधारण सिपाहीके पदतकपर अधिकांश नागर-जातिके ही लोग थे। एक तरहसे सरकारी नौकरियाँ पूर्णरूपसे नागर-जातिके ही हाथमें थीं। नागर-जाति 'कलम, कड़छी और बर्छी' द्वारा अत्यन्त प्रतिष्ठित और सम्पन्न हो गयी थी। यही कारण है कि आज भी नागर-जातिका राजकीय विभागोंमें विशेष हाथ है।

वंशीधरका जन्म भी उसी जातिमें हुआ था। अत: राज्यकी ओरसे उनकी नियुक्ति सौ रुपये मासिक वेतनपर थानेदारके पदपर हो गयी। राज्यकी ओरसे उन्हें काफी नौकर-चाकर और वाहन आदि मिले थे। अत: उनका पारिवारिक जीवन बड़े सुखके साथ बीतता था; समाजमें भी पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त थी। अगर कुछ कमी थी तो बस यही कि उनकी पत्नी दुरितगौरीका स्वभाव अच्छा नहीं था। उसे पतिकी अमलदारीका बहुत अधिक अभिमान था। 'झूठ-मूठके षड्यन्त्र रचना और दूसरोंको कष्ट पहुँचाना उसका स्वभाव ही बन गया था।' उसके दुर्गुणोंको देखते हुए ऐसा मालूम होता था मानो उसका नाम 'दुरितगौरी'

अक्षरशः सत्य है। ***'यथा नाम तथा गुण'*** वाली कहावत उसपर पूर्णरूपसे चरितार्थ होती थी। फिर भी गृहस्थी सुख-शान्तिके साथ चल रही थी।

जबसे बालक नरसिंहरामकी वाणी महात्माजीकी कृपासे खुली तबसे दादी जयकुँवरिको उनके विवाहकी चिन्ता रहने लगी। शीघ्र-से-शीघ्र अपनी सन्तानको विवाह-बन्धनमें जकड़ देना भारतके माता-पिता अपना एक कर्तव्य-सा समझते हैं। इस तरह वे एक बहुत बड़े सन्तान-ऋणसे अपनेको शीघ्र मुक्त कर लेना चाहते हैं। जयकुँवरिने भी सम्भवतः इसी भावनासे नरसिंहरामजीके विवाहका प्रयत्न करना शुरू कर दिया। घर सम्पन्न और प्रतिष्ठित था, अतएव उन्हें इस कार्यमें सफलता भी शीघ्र ही मिल गयी। प्रायः ९ वर्षकी उम्रमें ही उन्होंने नरसिंहरामजीका विवाह माणिकगौरी नाम्नी एक सात वर्षकी बालिकाके साथ कर दिया। माणिकगौरी सुरूपवती और सुलक्षणा कन्या थी; अतएव मनचाही योग्या पौत्रवधू पाकर उसे बड़ा सन्तोष हुआ।

वंशीधरने छोटे भाई नरसिंहरामके पालन-पोषण और विवाहकी ही चिन्ता नहीं की, बल्कि उनकी शिक्षाकी ओर भी ध्यान दिया। उन्होंने नरसिंहरामको एक संस्कृत-पाठशालामें पढ़नेके लिये बैठा दिया; परंतु नरसिंहरामका मन पढ़ने-लिखनेमें नहीं लगा। जबसे उन्हें महात्माजीके द्वारा इष्टमन्त्रकी प्राप्ति हुई, तबसे उनका मन अधिकाधिक भगवान्‌की ओर आकृष्ट होने लगा। वह निरन्तर ***'राधे कृष्ण'*** नामका जप किया करते थे। सुबह-शाम मन्दिरोंमें जाकर देवी-देवताओंकी पूजा करते, दर्शन करते और भजन-कीर्तन सुनते। श्रीशंकर भगवान्‌में भी उनकी बड़ी

भक्ति थी। वह मन्दिरमें जाकर बड़ी श्रद्धा और प्रेमके साथ उमा-महेश्वरकी पूजा-अर्चना करते और प्रेमानन्दमें विभोर होकर भोलानाथके गुणगान करते। अगर कहीं पुराण या भागवतकी कथा होती तो वहाँ जाकर बड़े ध्यानसे भगवत्कथा सुना करते। द्वारिका आने-जानेवाले साधु-महात्मा जब अपने गाँवमें आते तो उनके दर्शन करते, यथासाध्य उनकी सेवा करते, उनके उपदेश सुनते। अगर कोई भजन-कीर्तन करता तो स्वयं भी उसके साथ बैठकर भजनके पद गाते या करताल बजाया करते। कोई यदि भावावेशमें आकर नृत्य करने लगता तो वे भी उसके साथ नाचने-कूदने लगते। अगर कभी कोई रासमण्डली गाँवमें आ जाती तब तो इनके आनन्दका कोई ठिकाना ही न रहता। नित्य ही रासलीला देखा करते। श्रीराधा, श्रीललिता आदि सखियों तथा व्रजके अन्य गोप-गोपियोंके भगवत्प्रेमको देखकर वह इतने तल्लीन हो जाते कि उन्हें अपने शरीरकी सुधि-बुधि भी नहीं रहती। कभी-कभी तो स्वयं भी वह किसी मण्डलीमें शामिल हो जाते। जब उन्हें रासमें गोपी बनकर नाचनेका सुअवसर मिल जाता तब तो वह अपार आनन्दका अनुभव करते और कृष्णप्रेममें नाचते-नाचते बेहोश हो जाते। वह अपनी धुनमें खाना-पीना भी छोड़ देते, कई दिनों तो घरपर जाते ही नहीं। इसके लिये उन्हें भाई-भौजाईकी डाँट भी सुननी पड़ती, ताड़ना भी सहनी पड़ती, समाजमें निन्दा भी होती; परंतु फिर भी वह अपनी चाल न छोड़ते। भला, जो एक बार अमृतस्वरूप भगवत्प्रेमरसका आस्वादन पा गया, उसे कोई उससे दूर हटा सकता है? भक्त नरसिंहरामने पढ़ना-लिखना, खाना-पीना, सोना, खेलना-

कूदना, दुःख-सुख, निन्दा-स्तुति सब कुछ उस एक भगवत्प्रेमके ऊपर वार दिया।

वंशीधरने उन्हें अपने मनोऽनुकूल ठीक मार्गपर लानेके लिये कोई बात उठा न रखी, भौजाईने भरपूर कोसने तथा पति-पत्नी दोनोंको कष्ट पहुँचानेमें अपनी ओरसे कोई कोर-कसर न रहने दी; परंतु ***'जैसे काली कामरी चढ़त न दूजो रंग'***—नरसिंहरामके पक्के रंगपर कोई दूसरा रंग न चढ़ा। धीरे-धीरे उनकी उम्र भी प्रायः पन्द्रह वर्षकी हो गयी। भाईने जब देखा कि अब उनका पढ़ना-लिखना कठिन है तब उन्होंने उनको घोड़ोंकी परिचर्या तथा घास काटनेका कार्य सौंप दिया। परंतु इस साईसीके कामसे भी नरसिंहरामको कोई कष्ट नहीं हुआ। वह बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवन्नाम-स्मरण करते हुए शक्तिभर सारा कार्य करने लगे।

प्रायः सोलह वर्षकी अवस्था होते-होते नरसिंहरामकी पत्नी माणिकगौरीके गर्भसे एक पुत्रीका जन्म हुआ। उसके दो वर्ष बाद फिर माणिकगौरीको एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। पुत्रीका नाम कुँवरबाई और पुत्रका नाम शामलदास रखा गया। इस तरह नरसिंहरामको दो सन्तानोंका पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

परंतु उनका यह सौभाग्य दुरितगौरीकी आँखोंका काँटा बन गया। एक तो यों ही देवर-देवरानीको देखकर वह सदा जला करती थी; अब उनके परिवारकी वृद्धि उसके लिये और भी असह्य हो उठी। दोनों भक्त दम्पति यद्यपि सेवक-सेविकाकी तरह दिन-रात घरके सब छोटे-बड़े काम किया करते थे, फिर भी दुरितगौरी यही समझती थी कि

ये लोग मुफ्त ही घरमें बैठकर खा रहे हैं और दिन-पर-दिन इनका खर्च भी बढ़ता ही जाता है। अतएव वह अब नित्य उनके कामोंमें अकारण दोष निकालने लगी और झूठी-झूठी बातोंसे उनके विरुद्ध अपने पतिके कान भरने लगी। नाना प्रकारके कारण दिखाकर उन्हें सताने लगी। वंशीधर यद्यपि यह जानते थे कि मेरी पत्नी बड़ी दुष्टा है, द्वेषवश छोटे भाई और उसकी पत्नीपर झूठा दोषारोपण करती है; वे बेचारे तो एकदम निर्दोष और पवित्र हैं, फिर भी कभी-कभी पत्नीकी बातोंमें आकर वह छोटे भाईको कुछ भला-बुरा सुना दिया करते थे। इस तरह परिवारमें कुछ कलहका सूत्रपात हो गया।

वृद्धा जयकुँवरिको इस कलहका भावी कुपरिणाम स्पष्ट दिखायी दे रहा था। परंतु घरमें मृत्युशय्यापर पड़ी एक वृद्धाकी बात कौन सुनता है? वह चुपचाप सब देखा करती। धीरे-धीरे उसकी अवस्था भी लगभग ९५ वर्षकी हो गयी। उसने मनमें सोचा—'अब मेरा जीवन बहुत थोड़ा है। अगर नरसिंहरामकी लड़कीका विवाह भी मेरे सामने ही हो जाता तो अपनी यह अन्तिम अभिलाषा भी पूरी करके मैं शान्तिपूर्वक इस संसारसे विदा होती और इस बेचारीका भी एक ठिकाना लग जाता।' उन्होंने एक दिन वंशीधरको पास बुलाकर अपनी अभिलाषा प्रकट की।

वंशीधरने वृद्धा दादीकी आज्ञा टालना उचित नहीं समझा। उन्होंने एक कुलीन और सुयोग्य वरकी खोज करनेके लिये कुलके पुरोहितको भेज दिया। पुरोहितजी घूमते-फिरते काठियावाड़के 'ऊना' नामक गाँवमें आये और उन्होंने वहाँके श्रीमन्त नागर श्रीरंगधर मेहताके पुत्र वसन्तरायके

साथ कुँवरबाईका विवाह निश्चित किया। निश्चित तिथिपर बड़े धूमधामके साथ कुँवरबाईकी शादी हो गयी। वृद्धा जयकुँवरिकी अभिलाषा पूरी हुई और वह उसके लगभग तीन मास बाद शान्तिपूर्वक इस असार संसारसे सदाके लिये विदा हो गयी।

शिवका अनुग्रह

बड़े भाईकी आज्ञाके अनुसार नरसिंहराम बड़ी सावधानीसे पशुओंका पालन करते थे। अपनी ओरसे जान-बूझकर काममें तनिक भी लापरवाही नहीं करते थे। जब इससे फुरसत मिलती थी तब भजन-पूजन करते थे, कथा-कीर्तनमें जाते थे अथवा साधुसंग किया करते थे। परंतु भौजाई उनसे कभी सन्तुष्ट नहीं रहती थी; वह बराबर उन्हें तंग करनेका कोई-न-कोई मौका ढूँढ़ा ही करती थी। नरसिंहराम उसके दुष्ट स्वभावके कारण उससे बहुत डरा करते थे। अपनी ओरसे बराबर ऐसी चेष्टा किया करते थे, जिसमें उसे शिकायत करनेका मौका ही न मिले। अधिकतर वह घर भी तभी आते जब बड़े भाई घरमें होते। जिस दिन सरकारी कामसे वंशीधर कहीं बाहर चले जाते, उस दिन तो नरसिंहरामकी दुर्दशा हो जाती। दुरितगौरीका सब दिनका क्रोध मानो उसी दिन जाग्रत् हो उठता और वह जितना कष्ट पहुँचा सकती, उस दिन उतना दोनों पति-पत्नीको पहुँचाती। फिर भी भक्तराज कभी विचलित न होते। श्रीमद्भगवद्गीतामें जो भगवान्‌ने यह कहा है कि—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

(२।५६)

'जिसका मन दुःख प्राप्त होनेपर उद्वेगरहित रहता है, सुखोंकी प्राप्तिकी स्पृहा जिसकी दूर हो गयी है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है।'—ठीक इसी स्थितिके अनुसार सब कुछ शान्तिपूर्वक सहन करते हुए, आनन्दपूर्वक अपना काम करते रहते।

एक दिन वंशीधर राज्यकार्यके लिये बाहर गये हुए थे। नरसिंहराम प्रातःकाल घरका काम समाप्त कर घास काटनेके लिये गये और प्रायः सन्ध्या-समय घासका बोझ लेकर लौटे। घोड़ोंके सामने घास डालकर उन्होंने स्नान किया। दिनभर जंगलमें घूम-घूमकर घास काटते रहनेसे वह क्षुधासे पीड़ित हो रहे थे। अतः उन्होंने भौजाईसे भोजन माँगा।

इसपर दुरितगौरी कड़ककर कहने लगी—'देखो तो! बड़ा भगत आया है। रोज सुबह घास काटनेका बहाना करके घरसे निकल जाता है और दिनभर भिखमंगोंके साथ भटकता रहता है, घरबारकी कुछ भी परवा नहीं करता और फिर कहता है कि भूख लगी है।'

'आज तो मैं सत्संगमें बिलकुल नहीं गया, प्रातःकालसे ही घास लाने चला गया था, आजकल घासके लिये बहुत दूर जंगलमें जाना पड़ता है; इसलिये बहुत देर लगती है।'—इस प्रकार नरसिंहरामने अपनी निर्दोषता साबित करनेकी चेष्टा की।

इस बीच दुरितगौरीने कुछ बासी रोटियाँ नरसिंहरामके सामने लाकर पटक दीं। घरमें कई प्रकारकी ताजी चीजें तैयार थीं; परंतु वे नरसिंह मेहताके योग्य नहीं समझी गयीं। जेठानीके इस व्यवहारको देखकर पतिपरायणा माणिकबाईको असह्य कष्ट हुआ। एक सती भला अपने जीवनसर्वस्व पतिदेवताकी दुर्दशा कैसे सहन कर सकती है, भले ही औरोंकी दृष्टिमें वह सब प्रकारसे अयोग्य ही क्यों न हो? माणिकबाईका हृदय विदीर्ण हो गया और वह कसक उसके नेत्रद्वारसे आँसूके रूपमें झरने लगी। उस समय वह और कर ही क्या सकती थी? द्रव्योपार्जनमें अशक्त और पराधीन पतिकी नारीका घरमें अधिकार ही कितना?

नरसिंहरामने पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिये ज्यों-त्यों करके कुछ रोटीके टुकड़े गलेके नीचे उतारे और पानी पीकर वह उठ गये। बस, दुरितगौरीके क्रोधानलमें मानो घीकी आहुति पड़ गयी। वह चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी, 'देखो! ***भजनमें साधु और भोजनमें भीम!'*** ऐसा दिमाग मेरे घरमें नहीं चलेगा। इतनी तकलीफ तो मैं तेरे भाईके लिये भी नहीं उठाती। वह तो बेचारा ***'जो हाजिर सो हुजूर'*** कर लेता है और इसका तो मिजाज ही दूसरा रहता है। ***'भाग मजूरका और मन राजाका।'*** मैं कहे देती हूँ, कलसे जहाँ अच्छा भोजन मिले वहीं जाकर खा लेना। आजसे मेरे घरमें तेरा कोई काम नहीं। मैं तेरी और तेरी इस कुभार्याकी गुलाम नहीं हूँ।'

अकारण भौजाईको इस प्रकार आगबबूला होते देख नरसिंहराम कुछ बोल न सके। चुपचाप उसकी बातें सुन रहे थे। परंतु उनके मौनसे दुरितगौरीका रोष बढ़ता ही गया, उसने रणचण्डीका स्वरूप धारण कर लिया और गरज-गरजकर वह अनाप-शनाप बकने लगी।

इतनेमें ही वंशीधर आ पहुँचे। पतिको देखते ही दुरितगौरीने अपनी माया भी फैला दी। वह रुदन करती हुई कहने लगी— 'घरमें अब मेरा कुछ काम नहीं; इन भगत और भगतानीको लेकर खुशीसे रहो; कमानेका तो ठिकाना नहीं और मिजाज इतना! मैं तो अब थक गयी। बस, अब इस घरमें या तो नरसिंह नहीं या मैं नहीं।'

मायाविनी पत्नीके चक्करमें पड़कर अच्छे-अच्छे पुरुष भी मर्कटवत् बन जाते हैं, फिर बेचारे वंशीधरका क्या दोष? दुरितगौरीका पक्ष लेकर वह भी नरसिंहरामको ही दोषी मानकर खोटी-खरी सुनाने लगे और अन्तमें उन्होंने कठोरतापूर्वक घरसे निकल जानेकी आज्ञा भी दे दी।

अब नरसिंहरामको क्या सहारा था? वह पत्नीको वहीं छोड़कर उदास मन घरसे निकल पड़े और मुहल्लेके चबूतरेपर चले आये। वैशाख शुक्ला पूर्णिमाके चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलासे प्रकाशित होकर पृथ्वीपर अमृतकी वर्षा कर रहे थे; परंतु उससे नरसिंहरामको तनिक भी शान्ति नहीं मिलती थी। वह प्राय: आधी राततक बैठे-बैठे यह विचार करते रहे कि क्रोध उतरनेपर बड़े भाईको अवश्य पश्चात्ताप होगा और वह थोड़ी देरमें मुझे बुलाने आयेंगे। उसके बाद उन्हें निद्रा आ गयी। प्रात:काल हो गया; पर किसीने नरसिंहरामकी खोज न की। वह मन-ही-मन विचार करने लगे, 'इस नश्वर संसारमें सभी सम्बन्धी स्वार्थसे ही प्रीति करते हैं; नि:स्वार्थ प्रीति करनेवाले तो वही एक विश्वम्भर परमात्मा हैं; अत: अब घर जानेसे लाभ ही क्या?'

वह चबूतरेसे उठे और एक ओर चल पड़े। वह कहाँ और किसलिये जा रहे हैं, इसका उन्हें कोई ज्ञान नहीं था। वह चलते-चलते शहरसे बाहर कोसों दूर एक भीषण जंगलमें पहुँच गये। भूख-प्यास और रास्ता चलनेके कारण वह बहुत थक गये थे; अतएव विश्राम करनेके लिये एक वट-वृक्षकी छायामें बैठ गये। अब प्राय: सायंकाल हो रहा था। वह विचार करने लगे कि अब कहाँ जाना चाहिये। इस संसारमें दूसरा अपना है ही कौन? सर्वसन्तापहारी परमकल्याणकारी भगवान् भोलानाथके अतिरिक्त और कोई शरण देनेवाला नहीं। प्राय: आठ वर्षोंसे रोज शिवजीकी पूजा करता आ रहा हूँ, प्रत्येक सोमवारको रुद्री करता हूँ, सावनभर बेलपत्र चढ़ाता हूँ, अवश्य ही भक्तभयभंजन औढरदानी भगवान् शंकर मेरी सहायता करेंगे।

नरसिंहराम इसी विचारमें निमग्न थे कि उनकी दृष्टि समीपमें

ही एक जीर्ण मन्दिरपर पड़ी। वहाँपर एक सुरम्य सरोवर भी था। यह देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वह शिवालयपर जा पहुँचे। उन्होंने कपड़े उतारे, सरोवरमें स्नान किया और बेलपत्र, फूल आदिसे शंकरकी पूजा की। फिर शिवलिंगके सामने सिर टेककर फूट-फूटकर रोने लगे—'दीनानाथ! क्या मेरी दशापर आपको दया नहीं आती? भाई-भौजाईने मुझे घरसे निकाल दिया है। अब मेरा और कौन सहारा है? जन्मसे ही आपपर मेरा भरोसा रहा है, आपके ही नामका बल रहा है। आप यदि शरणमें नहीं रखेंगे तो दूसरा कौन रखेगा? अब मैं आपके द्वारपर पड़ गया; आप प्रसन्न होइये, अन्यथा मैं अन्न-जलके बिना यहीं प्राण त्याग दूँगा और इस ब्रह्महत्याका दोष आपपर लगेगा।'

नरसिंहरामकी दृष्टिमें शिवलिंग पत्थर नहीं था, बल्कि साक्षात् कैलासपति थे। अतएव वह निरन्तर विश्वासपूर्वक प्रार्थना करने लगे और रुदन करने लगे। जंगलकी भयावनी रात थी, नाना प्रकारके हिंसक जन्तु चारों ओर बोल रहे थे, कितने ही उस मन्दिरमें सोनेके लिये आते थे और मनुष्यको देखकर डरसे वहाँसे चले जाते थे; परंतु नरसिंहरामको इन सब बातोंकी कोई सुधि न थी। वह तो अखिल भुवनपतिके ध्यानमें पड़े थे और उन्हींकी पुकार कर रहे थे।

धीरे-धीरे रात बीती; सूर्य भगवान्के आगमनसे पृथ्वीका अन्धकार न मालूम कहाँ विलीन हो गया। फिर भी ब्राह्मण नरसिंह मेहता उसी स्थितिमें जमीनपर सिर टेके रुदन और विनती कर रहे थे। फिर दिन बीता और रात आयी और इस तरह दिनके बाद रात और रातके बाद दिन आता और चला जाता। परंतु वह उसी स्थितिमें पड़े रहे। वह अपनी श्रद्धा और संकल्पसे लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए।

इस प्रकार प्रायः सात दिनकी उग्र तपस्यासे कैलासपतिका आसन डोल गया और सातवें दिन आधी रातके बाद भगवान् भोलानाथ भक्तके सामने साक्षात् प्रकट हुए। उन्हें देखते ही भक्तराज उनके परमपावन चरणकमलोंपर यह कहते हुए लोट गये कि 'मेरे भोलानाथ आओ! मेरे शम्भु आओ!'

भगवान् शंकरने कहा—'बेटा! मैं तुम्हारी सात दिनकी घोर तपश्चर्यासे अत्यन्त प्रसन्न हूँ; तुम मुझसे इच्छित वर माँग लो।'

भक्तराजने नम्रतापूर्वक प्रार्थना की—'भगवन्! मुझे किसी वरदानकी इच्छा नहीं है। फिर भी आपकी आज्ञा वर माँगनेकी है; अतएव जो वस्तु आपको अत्यन्त प्रिय हो, वही वस्तु आप वरदानमें देनेकी कृपा करें।'*

'वत्स! तुमने तो वरदान बड़ा सुन्दर माँगा। जगत्भरमें भगवान् श्रीकृष्णसे अधिक प्रिय वस्तु मेरी दृष्टिमें दूसरी कोई नहीं है। यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन करा दूँ।' भगवान् सदाशिवने उत्तर दिया।

'भगवन्! यही तो इस असार संसारमें सारभूत और दुर्लभ वस्तु है। फिर जो वस्तु आपको प्रियातिप्रिय है, उसे अप्रिय कहनेकी धृष्टता कौन कर सकता है?' नरसिंहरामने निवेदन किया।

नरसिंहरामकी ऐसी निष्ठा देखकर शंकरजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने भक्तराजको दिव्य देह प्रदानकर, उन्हें साथ ले दिव्य द्वारिकाके लिये तुरन्त प्रस्थान किया।

---

* तमने जे वल्लभ होय जे दुर्लभ, आपो रे प्रभुजी मुने दया रे आणी।

रासदर्शन

भगवान् शंकर वृषभपर सवार होकर भक्तराज नरसिंह मेहताके साथ बात-की-बातमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके परमधाम द्वारिकामें पहुँच गये। उस दिव्य पुरीकी अलौकिक शोभा देखकर भक्तराज मुग्ध हो गये। उन्होंने उस धामके विषयमें कहा है कि वहाँकी भूमि सोनेकी है। वहाँके महलोंमें विद्रुममणिके स्तम्भ लगे हुए हैं और छत रत्नोंसे जड़ी हुई हैं। वह दिव्य पुरी नित्य नये शृंगारोंसे सुसज्जित रहती है। वहाँ सदा दिव्य प्रकाश फैला रहता है, जिसका तेज यहाँके प्रकाशसे करोड़गुना दीखता है। वहींके प्रकाशसे सूर्य और चन्द्रको ज्योति प्राप्त होती है। वहाँके प्रकाशसे बेचारे सूर्य-चन्द्रकी क्या तुलना की जाय, करोड़ों सूर्यके समान ज्योति तो केवल श्रीभगवान्‌की एक नखमणिसे निकला करती है।*

ऐसे परमधामकी दिव्य शोभाको देखते हुए भगवान् शंकर द्वारिकाधीशके राजमहलमें पहुँचे। उस समय वहाँ भगवान्‌की धर्मसभा बैठी हुई थी। राजराजेश्वर देवकीनन्दन श्रीकृष्ण राजसिंहासनपर विराजमान थे। उनकी सभाके सभासद् परमभागवत उग्रसेन, बलराम, अक्रूर, उद्धव, विदुर, अर्जुन आदि यथास्थान

---

* कनकनी भोम विद्रुमना थाँभला, रतनजडीत तांहां मोहोल मेडी।

× × × ×

नगर श्रीद्वारकां राय रणछोडजी, नित नवा शुभ शणगार साजे।

× × × ×

कोटि प्रकाशनुं तेज व्यापी रह्यु, रवि शशि जोत उद्योत भासे।
दधिसुत अर्कते कोण तांहां बापडा, कोटी रवि कान्ति नखमणि प्रकाशे।

(सामलदासनो विवाह)

बैठे हुए थे तथा भगवान्‌की सोलह हजार एक सौ आठ पटरानियाँ भी विद्यमान थीं। भगवान् शंकरको देख सभी सभासद् उठ खड़े हुए। स्वयं भगवान् तुरंत आसन छोड़कर शीघ्रतासे शंकरका स्वागत करनेके लिये दौड़ पड़े। उन्होंने हाथ जोड़कर शंकरका स्वागत किया और उन्हें एक दिव्य आसनपर बैठाया। तत्पश्चात् उनकी विधिवत् पूजा करके आगमनका कारण पूछा।*

सदाशिवने उत्तर दिया—'भगवन्! यह जूनागढ़का एक उच्च ब्राह्मणकुलोत्पन्न वैष्णव भक्त है। इसने सात दिनतक कठोर तप करके मुझे प्रसन्न किया और मैंने इसको वरदानमें अपनी प्रिय वस्तु देनेका वचन दिया है। इसलिये आज मैं इस वैष्णव भक्तको आपके पुनीत चरणकमलोंमें समर्पण करनेके लिये आया हूँ। आप भक्तवत्सल हैं, सदा भक्तोंके अधीन रहते हैं। अतएव आशा है मेरी प्रार्थना आप अवश्य स्वीकार करेंगे।'

इतना सुनते ही भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्नतापूर्वक भक्तराज नरसिंहरामके सिरपर हाथ रखकर उन्हें स्वीकार कर लिया और भगवान् शंकर वहाँसे विदा हो गये। भक्तराज प्रेमसे गद्‌गद होकर श्रीप्रभुके चरणोंमें लोट गये और अश्रुधारासे उन्होंने श्रीचरणोंको पखार दिया। भगवान्‌ने भक्तराजको सम्बोधित करके कहा—'वत्स! मेरे और महेश्वरके स्वरूपमें किंचिन्मात्र भी अन्तर नहीं है। मैं शंकरको अपना आराध्यदेव समझता हूँ और शंकर

* धर्मसभामां जहां उग्रसेन तहां, संकरषणजी संग बेठा।
ताहां वसुदेव ने देवकीनन्दन, राजराजेश्वर कृष्ण बेठा॥
अक्रूर ओधव विदुर ने अरजुन, शीघ्र उभा थया हरने जाणी।
सोल सहस्र शत आठ पटराणियो, मध्य आव्या शूलपाणी॥
धाईने जई मल्या, आसनेथी चल्या, कर जोडीने कृष्णे सनमान दीधुं।

मुझको। इस प्रकार हम दोनोंके अभिन्न होनेके कारण तुमने जो शंकरकी पूजा की है, वह वास्तवमें मेरी ही पूजा है।'

'प्रभो! मैं किस योग्य हूँ? मैं तो भगवान् सदाशिवकी कृपासे '**श्रीकृष्णः शरणं मम**' शब्दभर जान सका हूँ।' इस प्रकार नरसिंहरामने नम्रतापूर्वक निवेदन किया।

'वत्स! जो मनुष्य मुझे अपना स्वामी समझता है, मैं उसका दास बन जाता हूँ। तुम्हारी नैष्ठिक भक्ति देखकर आज मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ।' इतना कहकर भगवान् नरसिंहरामको अपने अन्त:पुरमें ले गये और उन्होंने अपना सारा वैभव नरसिंहरामको दिखाया।[१]

उस समयसे नरसिंहराम स्वयं श्रीभगवान्‌की सेवामें रहने लगे। उन्हीं दिनों शरत्-पूर्णिमाका समय आ गया और श्रीधाममें उसकी तैयारी हुई।[२] तत्काल वृन्दावनकी तरह सुरम्य रासमण्डल तैयार हो गया और सोलह सहस्र गोपियाँ और इतने ही भगवान्‌के स्वरूप प्रकट हो गये। उसी समय भक्तराजने भी गोपी-वेषमें अपना राग छेड़ दिया। वह भगवद्‌गुणगानमें एकदम तल्लीन हो गये। उनके इस भावको देखकर गोपाल अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने पुरस्कारमें भक्तराजको अपना पीताम्बर ओढ़ा दिया।[३] उसके बाद श्रीभगवान्‌ने शंखध्वनि की और रास शुरू हो गया।

१-अन्तरपूरमां भुजने तेडी गया, वैभव कृष्णनो सर्व दाख्यो।

२-शरद पुनम तणो दिवस तहाँ आवीओ, रास मरयादनो वेण वाध्यो।

३-नरसहीए तहाँ ताल साध्यो।

× × सखी रूपे थयो गति गावा।

× × हुं सुखे लागुं गान करवा, प्रसन्न थया गोपाल।

× × प्रेमे पीताम्बर आपीयुं श्रीहरि, रीझिया कृष्णजी ताल वाहीतां।

भगवान्‌ने नरसिंहरामके हाथमें दीपक देकर रासमण्डलके बीचमें खड़ा कर दिया। भक्तराज रास देखनेमें तन्मय हो गये। अकस्मात् दीपककी जलती हुई शिखा उनके हाथके वस्त्रमें लग गयी। बस, उनका सारा हाथ दीपककी भाँति जलने लगा। हाथ ही मशाल बन गया, परंतु भक्तराजको इसकी तनिक भी सुधि न रही। उनका मन तो श्रीप्रभुके साथ एक हो रहा था, शरीरके साथ उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं था। अतएव वह एक भावसे अन्ततक रासदर्शन करते रहे, उनका चित्त एक क्षणके लिये भी विचलित न हुआ।

अन्तमें रासलीला समाप्त होनेपर स्वयं भगवान्‌की दृष्टि नरसिंहरामके जलते हुए हाथपर पड़ी। तुरंत उन्होंने आगे बढ़कर हाथकी आगको बुझा दिया और प्रेमसे हाथ फेरकर उसकी सारी पीड़ा दूर कर दी, भक्तराजकी इस तन्मयताको देखकर रुक्मिणी आदि महादेवियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। माता रुक्मिणीने तो प्रसन्न होकर अपना हार ही उतारकर भक्तराजको पहना दिया। भगवान्‌ने भी भक्तराजकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और 'भक्त नरसिंहको मेरे समान जानो' ऐसा कहकर उन्हें अत्यन्त सम्मान प्रदान किया।

इस प्रकार आनन्दोत्सव, भगवद्दर्शन और भगवत्सेवामें नरसिंहरामको प्रायः एक मास बीत गया; परंतु उन्हें यह समय एक निमेषसे अधिक नहीं मालूम हुआ। एक दिन वह बैठे-बैठे भगवान्‌की चरणसेवा कर रहे थे कि अचानक उनका ध्यान अपने सौभाग्यपर गया और वह सोचने लगे—'अहा, मैं धन्य हूँ जो मुझे साक्षात् लक्ष्मी तथा देव-मुनियोंको भी दुर्लभ भगवान्‌की चरणसेवा करनेका सुअवसर

प्राप्त हुआ है।⋯परंतु ऐसा सौभाग्य मुझे अपनी भौजाईकी ही कृपासे प्राप्त हुआ; अतएव मुझे उन्हींका उपकार मानना चाहिये।'

भक्तराज इसी विचारमें डूबे हुए थे कि एकाएक उन्हें भगवान्‌की वाणी सुनायी पड़ी। उन्होंने कहा—'वत्स! तुम्हारी सेवा और एकान्त भक्तिसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ! कहो, तुम क्या चाहते हो?'

नरसिंहरामने निवेदन किया—'भगवन्! यदि दासकी धृष्टता न समझी जाय तो इससे पहले मेरा एक प्रश्न है। यदि किसी दरिद्र मनुष्यको चिन्तामणि मिल जाय और वह फिर भी सामान्य धनके लिये लालच करे तो उसे क्या कहा जायगा?'

भगवान्‌ने उत्तर दिया—'असन्तोषी⋯मूर्ख!'

'तब स्वामिन्! आप मुझे मूर्ख क्यों बनाना चाहते हैं? चिन्तामणिके समान अपने चरणकमलोंकी प्राप्ति कराकर फिर आज मुझसे अन्य माँगकी आशा रखते हैं? नाथ! मुझे भुलावेमें न डालिये। मैं अब और कुछ नहीं चाहता, मैं अब सदा आपकी चरण-सेवामें ही रहना चाहता हूँ।' नरसिंहरामने नम्रतापूर्वक कहा।

वत्स! तुम्हारी निष्ठा धन्य है। परंतु जगत्‌में प्रत्येक गृहस्थके ऊपर तीन प्रकारके ऋण होते हैं—पहला ऋण है स्त्री-पुत्रादिका, दूसरा पितरोंका और तीसरा देवोंका। मनुष्य गृहस्थाश्रमको स्वीकार करके जबतक उन ऋणोंसे मुक्त नहीं हो जाता तबतक उसे पुनर्जन्म धारण करना पड़ता है। अतः मेरी आज्ञासे मृत्युलोकमें जाकर तुम इन तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाओ।' भगवान्‌ने कहा।

नरसिंहरामको यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। भगवान्‌से अलग होना उनके लिये असहनीय था। अतः उन्होंने सजल नेत्रोंसे कहा—'प्रभो! आपके चरणोंकी धूलि प्राप्त होनेपर भी क्या कोई ऋण शेष रहता है? नाथ! ऐसी आज्ञा देकर आप पुनः मुझे संसारमें न फँसाइये। मैं संसारसे त्रसित होकर आपके चरणोंमें आया हूँ। आपके चरणोंसे विमुख होकर मैं पुनः संसारके व्यावहारिक कार्योंमें नहीं फँसूँगा।'

भगवान्‌ने कहा—'भक्तराज! सत्य है, मेरी शरण प्राप्त होनेपर जीव तमाम ऋणानुबन्धसे मुक्त हो जाता है। तुम भी अपने ऊपर कोई ऋण न समझो—पर लोकसंग्रहके लिये तो ऋणोंसे मुक्त होना ही चाहिये। तुम जाओ। सब काम मेरी पूजा समझकर करो, साथ ही मेरे विग्रहकी भी अर्चना करो। तुम्हारे-जैसे ऐकान्तिक भक्तके लिये यद्यपि मूर्ति-पूजा अनिवार्य नहीं, फिर भी मैं तुम्हें ध्यान-पूजा करनेके लिये अपनी प्रतिमा देता हूँ। इस प्रतिमाकी पूजा-अर्चा करने और ध्यान करनेसे तुम्हारी भक्ति और भी दृढ़ हो जायगी। साथ ही यह करताल भी मैं देता हूँ। इस करतालके द्वारा जब तुम मेरा कीर्तन करोगे तभी मैं तुम्हारे पास उपस्थित हो जाऊँगा और तुम्हारे गृहस्थाश्रमके सभी कार्योंको सिद्ध कर दूँगा। मेरा यह प्रण है कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

'जो अनन्यभावसे मुझमें स्थित भक्त मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य

एकीभावसे मुझमें स्थित पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ। जो मनुष्य मेरे इस प्रणको स्मरण रखकर तदनुकूल आचरण करता है, वह गृहस्थाश्रमी होनेपर भी कभी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता। अतः तुम जूनागढ़में जाकर अनन्यभावसे मेरी भक्ति करो।'

भगवान्‌के इस प्रकार आश्वासन देनेपर नरसिंहराम राजी हो गये। भगवान्‌ने उन्हें अपनी प्रतिमा और करताल सौंप दी एवं पीताम्बर और मयूरपुच्छका मुकुट पहना दिया। नरसिंहरामने भगवान्‌के चरणोंपर गिरकर बार-बार प्रणाम किया और फिर भागवती प्रेरणासे तुरन्त जूनागढ़ जा पहुँचे।

अनन्याश्रय

प्रात:कालका समय था; भगवान् भुवनभास्करने अपने उष:कालीन प्रकाशसे दसों दिशाओंको सुवर्णमयी बना रखा था। इसी समय भक्तप्रवर नरसिंहराम जूनागढ़के समीप गरुड़ासनसे उतर पड़े। उन्होंने एक समीपवर्ती तालाबपर स्नानादि नित्य-क्रियाओंसे छुट्टी पा कुछ देर भगवद्भजन किया। उसके बाद उन्होंने सोचा—'मैं किसके पास चलूँ? भाई-भौजाईने तो उसी दिन घरसे निकाल दिया था; वे लोग क्यों मेरा स्वागत करेंगे? परंतु उनके सिवा अपना दूसरा है भी कौन? पहले तो उन्हींके पास चलना चाहिये, चाहे वे मेरा अपमान ही क्यों न करें।'

उनके पास भगवान्‌की दी हुई प्रतिमा, करताल, मोरपुच्छका मुकुट और पीताम्बरके सिवा और कुछ तो था नहीं। इन्हीं वस्तुओंके साथ वैष्णव-वेषमें वह अपने घर आये। उन्होंने बड़ी नम्रताके साथ अपने भाई-भौजाईको प्रणाम किया। उनके इस वेषको देखकर वंशीधरको बड़ा आश्चर्य और साथ ही क्रोध हुआ। उन्होंने कहा—'अरे मूर्ख! तैने यह क्या बाना धारण किया है? मस्तकपर तिलक, गलेमें तुलसीकी माला, हाथमें करताल, सिरपर मोरपुच्छका मुकुट और कमरमें पीताम्बर—यह सब किसने तुझे पहनाया है! उतार फेंक इस वेषको।'

नरसिंहरामने बड़ी विनयके साथ कहा—'भाईजी! यह आप क्या कह रहे हैं? यह वेष स्वयं वैकुण्ठवासी भगवान् श्रीकृष्णजीका दिया हुआ है। मेरे लिये यही उनका परम पवित्र प्रसाद है। भगवान्‌के प्रसादकी अवज्ञा स्वयं भगवान्‌की अवज्ञा है।'

वंशीधरने तिरस्कारपूर्ण शब्दोंमें कहा—'अरे मूर्ख! क्यों पागलपनकी बातें करता है, नादानी छोड़, अब तू लड़का नहीं रहा, दो बालकोंका पिता हुआ। यह भिखारियोंका-सा वेष छोड़कर दो पैसा पैदा करनेका उपाय कर। नात-जातमें क्यों मेरी हेठी कराता है? ये सब चाल छोड़कर ठीक रास्तेपर आ जाय तो अब भी राजासे कह-सुनकर तुझे दस-पाँचकी कोई नौकरी दिला दूँ। इस पागलपनमें क्या रखा है? भूखों मरना पड़ेगा।'

'भाई! आप मेरे बड़े भाई होनेके नाते पितातुल्य पूज्य हैं; आपकी बातें मानना ही मेरा धर्म है। परंतु मैं लाचार हूँ। यह वेष मेरे प्रियतम परमात्माका दिया हुआ है। यह मूर्ति, करताल, मुकुट, पीताम्बर आदि सभी वस्तुएँ उन्हींसे प्रसादस्वरूप प्राप्त हुई हैं। अतः ये मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। इन वस्तुओंका और इस वेषका त्याग मुझसे जीते-जी नहीं हो सकता। अवश्य ही संसारकी दृष्टिमें यह मेरा पागलपन ही है। दुनियाका चश्मा ही न्यारा है; दुनियाको सयाने मनुष्य दीवाने-से प्रतीत होते हैं, यह इतिहासप्रसिद्ध बात है। क्या प्रह्लादको हिरण्यकशिपुने पागल नहीं समझा था? विभीषणको रावणने मूर्ख नहीं समझा था? जहाँ ऐसी बात है वहाँ तो दीवाना बनकर रहना ही श्रेयस्कर है। आशा है, इस ढिठाईके लिये आप क्षमा करेंगे।' नरसिंहरामने निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया।

'बेवकूफ! क्यों व्यर्थ मुझे समझानेकी चेष्टा कर रहा है? भगवान् कहाँ तेरे लिये रास्ता देख रहे थे कि तू उनसे मिल आया? तेरे-जैसे अक्लमन्दोंको यदि वह दर्शन देने लगें तब तो संसार ही सूना हो जाय, वैकुण्ठमें फिर

घुसनेको जगह भी न मिले। अरे, कोई धूर्त मिल गया होगा धूर्त—

जैसेको तैसा मिला इसमें कौन नयाई।
मूरखको मूरख मिला आओ मूरख भाई॥

—'नरसिंह! अब इस बेवकूफीको छोड़, नहीं तो बहुत पछताना पड़ेगा। नात-गोत, सम्बन्धी कोई साथ न देगा। लड़कीका विवाह तो हो गया, परंतु लड़केका विवाह होना मुश्किल हो जायगा और विवाह नहीं होनेसे हमारा कुल भी नीचा माना जायगा।' वंशीधरने पुनः समझानेकी चेष्टा की।

'भाईजी! मुझे तो बस मूरख ही रहने दीजिये, यदि परमात्माकी भक्ति करनेसे आपका कुल नीचा हो जाता हो तो ऐसे कुलकी मुझे कोई परवा नहीं; मुझे तो भगवान्‌का····।'

अभीतक दुरितगौरी चुपचाप दोनों भाइयोंकी बातचीत सुनती रही; परंतु अब नरसिंहरामका हठ उसको असह्य हो उठा। उसने बीचमें ही उनकी बात काटते हुए रोषपूर्ण शब्दोंमें कहना शुरू किया। 'देखो, बड़ा टीका लगाकर भगतराज आ गये! छोटे-बड़ेका तनिक-सी लिहाज नहीं; लाख समझाओ परंतु अपनी ज्ञानकथनी नहीं छोड़ेंगे। तेरा ज्ञान तुझे मुबारक हो; हमें तुझे साथ रखकर नात-गोतमें अपनी नाक नहीं कटानी है। या तो यह वेष उतार दे और भले आदमीकी तरह घरमें रह और नहीं तो हमें मुँह मत दिखा। मैंने तुम सब लोगोंका ऋण नहीं खाया है। यदि कुछ भी लाज-शर्म हो तो अपनी कुभार्याको साथ लेकर घरसे निकल जा! इतने दिन न मालूम कहाँ भूखों मरता रहा, अब फिर मेरी जान खानेको आ गया।'

'भाभी! ऐसे कठोर वचन क्यों मुँहसे निकाल रही हो? यदि आपको मेरा कुटुम्ब भारस्वरूप मालूम हो रहा है तो कलसे मैं अलग ही हो जाऊँगा। आप व्यर्थ मनमें क्लेश न मानें, मैं तो आपको माताके समान मानता हूँ।' नरसिंहरामने विनम्र स्वरमें कहा।

'तू बड़ा टेकवाला है, यह मुझे मालूम है। यदि ऐसी ही तेरी इच्छा है तो फिर कल क्यों? आज ही अच्छा मुहूर्त है। फिर यह अन्न-जल तेरा कमाया हुआ तो है नहीं, तू अभी अलग हो जा। तू तो बड़ा भगत होकर आया है, तुझे किस बातकी चिन्ता है?' दुरितगौरीने कहा।

दुरितगौरी शीघ्र-से-शीघ्र अलग हो जानेपर ही तुली हुई है, यह बात नरसिंहरामसे छिपी नहीं रही। उन्होंने देखा कि अब अपनी ओरसे साथ रहनेपर जोर देना व्यर्थ है। अब तो भगवान्‌के भरोसे इस घरसे तुरंत निकल जाना ही मेरे लिये उचित है। अतएव वह अपनी धर्मपत्नी, षोडशवर्षीया पुत्री तथा पुत्रके साथ अलग होनेके लिये तैयार हो गये। उन्होंने वंशीधरसे कहा—'भाई! आपलोगोंकी आज्ञा शिरोधार्य कर अभी अलग हो रहा हूँ। आप पूज्य हैं, आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपना धर्म-पालन करनेमें समर्थ हो सकूँ। साथ ही मेरी प्रार्थना है कि आप मनमें कोई कुभाव न रखें, छोटे भाईकी तरह ही मुझपर सदा स्नेह रखें, इसीसे मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। बस, विदा लेता हूँ। इतना कहकर उन्होंने बड़े भाईको प्रणाम किया।

उधर माणिकगौरीने भी दुरितगौरीको प्रणाम करते हुए कहा—'जेठानीजी! आपको प्रणाम करती हूँ और आपकी शुभाशीष चाहती हूँ।'

वंशीधर अभी चुप ही थे कि दुरितगौरी बोल उठी— 'बस, अब अधिक ज्ञान न बघार। मैंने तो आज ही तेरा स्नान कर लिया; अब तू चाहे भीख माँग या राज्यासनपर बैठ, हमें इससे कोई मतलब नहीं। अपनी यह सीख किसी भीख माँगनेवाले लँगोटियेको देना, हम संसारी लोगोंको इसकी कोई आवश्यकता नहीं।'

वंशीधर अन्ततक मौन ही रहे, मानो '**मौनं सम्मतिलक्षणम्**' के न्यायसे उनको भी इससे भिन्न कुछ न कहना हो। नरसिंहराम अपने छोटे-से परिवारके साथ चुपचाप घरसे विदा हो गये। उनके मनमें हर्ष या शोककी तनिक भी छाया नहीं थी। गीतामें श्रीभगवान्ने कहा है कि 'जिसका मन दुःखोंकी प्राप्तिमें उद्विग्न नहीं होता, जिसकी सुखोंकी प्राप्तिकी स्पृहा दूर हो गयी है, जिसका राग, भय और क्रोध नष्ट हो गया है, वह मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है।' सच्चे भगवद्भक्तकी यही स्थिति है, नरसिंहराम भी ऐसे ही भक्त थे—उनकी बुद्धि स्थिर थी।

परंतु स्त्रियोंका हृदय बड़ा कोमल होता है। थोड़ा भी कष्ट आनेपर उनके नेत्र झरने लगते हैं। भक्तराजकी धर्मपत्नी माणिकबाई घरसे निकलते ही रोने लगी। कुछ दूर जानेपर उन्होंने भर्रायी हुई आवाजमें पूछा—'नाथ! अब हम किसके आधारपर रहेंगे?'

'प्रिये! शोक करनेका कोई कारण नहीं; विपत्ति ही मनुष्यकी कसौटी है। हम अभी गाँवके बाहरकी धर्मशालामें चलकर निवास करेंगे। जो परमात्मा एक चींटीसे लेकर हाथीतकका भरण-पोषण करता है, वह क्या हमें भूखों मारेगा, हमें दुःखी रखेगा? उस धर्मशालाके समीप ही एक

जलाशय और मन्दिर भी है। अतएव यहाँ कम-से-कम स्नान-ध्यानमें तो कोई अड़चन पड़ेगी ही नहीं।' नरसिंहरामने दृढ़ताके साथ कहा।

'प्राणेश! धर्मशालामें तो मुसाफिर और साधु-फकीर रहा करते हैं; गृहस्थलोग धर्मशालामें रहना अच्छा नहीं समझते। फिर हमारी नागर-जाति अत्यन्त द्वेष करनेवाली है; इस बातका भी विचार कर लेना चाहिये।' माणिकबाईने लौकिक व्यवहारकी स्मृति दिला दी।

'प्रिये! यह संसार भी एक प्रकारकी धर्मशाला ही है। जिस प्रकार इस छोटी-सी धर्मशालामें मुसाफिरोंका आना-जाना बराबर जारी रहता है, उसी प्रकार संसाररूपी विशाल धर्मशालामें भी मुसाफिररूपी अनेक जीवोंका आवागमन लगा रहता है। राजासे लेकर रंकतक सभी मनुष्योंका यही हाल है। इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं।' नरसिंहरामने तात्त्विक ढंगसे समझाया।

'जैसी आपकी इच्छा' कहकर पतिव्रता माणिकबाई चुप हो गयी।

भक्तराज सकुटुम्ब गाँवसे बाहर धर्मशालामें जाकर ठहर गये। उनके परिवारकी एकमात्र सम्पत्ति थी—भगवान्‌की दी हुई प्रतिमा, करताल और मुकुट। सायंकाल हो जानेपर भक्तराज भगवान्‌की प्रतिमाके सामने बैठकर प्रेमपूर्वक भजन करने लगे। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह रहे थे।

प्रायः आधी राततक भजन निरन्तर चलता रहा। उसके बाद भजन बंदकर नरसिंहराम शयनकी तैयारी कर रहे थे कि ठीक उसी समय एक धनाढ्य सेठने नरसिंहरामके पास आकर प्रणाम किया और फिर वह एक ओर बैठ गये।

नरसिंहराम मनुष्यमात्रको 'हरि-जन' समझते थे और इसीलिये सबको इसी शब्दसे सम्बोधित किया करते थे। उन्होंने कहा—'हरिजन! आप कहाँ रहते हैं?'

'भक्तराज! मैं एक परदेशी महाजन हूँ, आजकल यात्रा कर रहा हूँ। कृपया आप अपना हाल सुनाइये।' सेठजीने संक्षेपमें अपना परिचय देकर प्रश्न किया।

नरसिंहरामने अथसे इतितक अपनी सारी घरबीती सुना दी। साधु पुरुषोंके दिलमें किसीसे कुछ छिपाव तो होता नहीं। सेठजीने उनकी दशापर समवेदना प्रकट करते हुए कहा—'भक्तराज! आपकी स्थिति सुनकर मुझे बड़ा कष्ट हुआ। यदि आप बुरा न मानें तो मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ।'

'सेठजी! आपकी उदारता धन्य है! मैं आपका आभारी हूँ, परंतु सबसे पहले मैं आपका पूरा परिचय जानना चाहता हूँ।' नरसिंहरामने आग्रहपूर्वक कहा।

'भक्तशिरोमणि! यदि आपकी यही इच्छा है तो मैं पहले अपना पूरा परिचय ही देता हूँ। आपसे कोई छिपाव तो है नहीं। मैं अक्रूर हूँ। भगवान् श्रीकृष्णको आपके निर्वाहकी अत्यन्त चिन्ता रहती है। इसलिये भगवान्‌की आज्ञासे मैं आपके पास आया हूँ। आप जो कुछ चाहिये, उसे निस्संकोच भावसे मुझे सूचित कीजिये।' अक्रूरजीने कहा।

भगवान्‌का अकस्मात् कृपा जानकर भक्तराज गद्‌गद हो गये। उनके मनमें निश्चय हो गया कि भगवान्‌का **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** वचन सर्वथा सत्य है। कुछ क्षण कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे भगवान्‌का स्मरण करके भगवान्‌की प्रेरणासे ही नरसिंहराम बोले—'महाराज! रहनेके लिये एक मन्दिर, जीवनरक्षाके लिये

कुछ अन्न-जल तथा साधुसेवाके लिये आवश्यक सामग्री, इसके सिवा मुझे और क्या चाहिये?'

'अच्छा प्रात:काल होते ही आपके आज्ञानुसार सारी व्यवस्था हो जायगी। फिर तो कोई चिन्ता नहीं रहेगी?' अक्रूरजीने प्रश्न किया।

'अभी तो कोई चिन्ता नहीं रहेगी। अगर कल ईश्वरेच्छासे कोई नयी चिन्ता उत्पन्न हो जाय तो उसे भगवान् जानें और आप जानें।' भक्तराजने अपनी ओरसे निश्चिन्तता प्रकट की।

भक्तराजकी निश्चिन्तता तथा '**जलपद्मवत्**' संसारसे निर्लिप्तता देखकर अक्रूरजी दंग रह गये और उनका द्वि-अर्थी उत्तर सुनकर हँसते हुए उनकी वाक्चातुरीकी प्रशंसा करने लगे।

दूसरे दिन प्रात:काल नरसिंहराम तो स्नानादि नित्यकर्मोंसे निवृत्त होकर भजन-पूजनमें प्रवृत्त हुए और अक्रूरजी सेठके वेशमें शहरमें जाकर उनका सारा प्रबन्ध करने लगे। उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दर मकान उनके रहनेके लिये मोल ले लिया और अन्न, वस्त्र तथा अन्यान्य गृहस्थीकी सारी वस्तुएँ खरीदकर उसमें भर दीं। सारा प्रबन्ध हो जानेपर अक्रूरजीने भक्तराजके पास आकर कहा—'भक्तराज! आपकी आज्ञाके अनुसार सभी वस्तुएँ तथा मन्दिर तैयार हैं। आप चलकर देख लीजिये और जैसी राय हो बतलाइये।'

'मेरी राय क्या है? आप जैसा ठीक समझें वैसा कर दें। आपकी रायमें ही मेरी राय है। केवल हजार-पाँच सौ साधुओंकी पंगत लग सके और भगवान्‌की सेवा-अर्चा हो सके, बस, इतनी व्यवस्था उस मकानमें होनी चाहिये।' नरसिंहरामने कहा।

'आप चलिये न। सब प्रकारकी व्यवस्था हो गयी है।' अक्रूरजीने उत्तर दिया।

भक्तराज परिवारसहित उस मकानमें आ गये। उन्होंने देखा, मकानके अन्दर श्रीकृष्ण-मन्दिर, कीर्तनशाला, पाकशाला, भाण्डारघर, अतिथिशाला, सोने-बैठनेकी जगह इत्यादि सब बातोंकी पूर्ण व्यवस्था है। भाण्डारघरमें तीन वर्षतकके लिये पर्याप्त अन्नादि सामग्री भर दी गयी है। किसी वस्तुकी कमी नहीं है।

अक्रूरजीने कहा—'भक्तराज! भगवान् श्रीकृष्णजीके आज्ञानुसार मैंने सारी व्यवस्था कर दी है। यह पाँच हजार स्वर्णमुद्रा आपको व्ययके लिये देता हूँ। अब आज्ञा दीजिये, मैं विदा होना चाहता हूँ।'

भगवान्‌के जन भगवत्स्वरूप ही होते हैं। परमभागवत नरसिंहराम सहसा कैसे अक्रूरजीको विदा कर देते? प्रेमाश्रुओंसे उनके नेत्र भर आये, गला रुँध आया। उन्होंने किसी तरह 'जैसी आपकी मर्जी' कहकर उन्हें 'जय श्रीकृष्ण' किया।

अक्रूरजी विदा हो गये। माणिकबाईने रसोई बनायी। भक्त-परिवारने भगवान्‌को भोग लगाकर अमृतस्वरूप प्रसाद ग्रहण किया।

माणिकबाईने बड़े सन्तोष और आनन्दके साथ कहा—'प्राणेश! आपका वचन तो अक्षरशः सत्य उतरा। आपकी भक्तिके प्रभावसे अपने-आप सारी व्यवस्था हो गयी।'

नरसिंहरामने कहा—'प्रिये! इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। मनुष्यकी रक्षा मनुष्यके द्वारा कभी नहीं हो सकती, जगत्‌भरका पोषक स्वयं परमपिता परमेश्वर ही हैं। जो मनुष्य उसका अनन्य-आश्रय ग्रहण कर लेता है, शोक-चिन्ता उसके पासतक नहीं फटकती। फिर मुझे तो भगवान् श्रीकृष्णने वचन दिया

है कि 'अनन्यभावसे मेरा चिन्तन करता हुआ जो मनुष्य मेरी उपासना करता है, उस नित्ययुक्त मनुष्यका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ।' प्रिये! हमारा कार्य तो बस इतना ही है कि हम अनन्याश्रय होकर उसका भजन-पूजन करते रहें।'

कुँवरबाईका दहेज

भक्तराज नरसिंहरामका जीवन एकान्त भजनमें बीतने लगा। साधु-संतोंके अखाड़ेमें जाना, सत्संग करना, भजन गाना यही उनके नित्यका कार्य था। यदि कोई भगवद्भक्त उनको अपने घर भजन करनेका आमन्त्रण दे जाता तो वह बड़े उल्लासके साथ रातभर उसके घर जाकर भजन करते रहते। इसके अतिरिक्त उनके घरपर सदा साधु-सन्तोंका जमघट लगा रहता और वह मुक्तहस्त होकर उनकी हर तरहसे सेवा किया करते। भगवद्भजन और साधुसेवाके अतिरिक्त उनके जिम्मे दूसरा कोई कार्य नहीं था।

बाहरसे आमदनीका कोई जरिया हो नहीं और खर्च खुले हाथों किया जाय तो दूसरेकी तो बात ही क्या, कुबेरके भण्डारका भी अन्त होते देर न लगे। यही कारण था कि भक्त नरसिंहरामको जो द्रव्य और अन्नादि सामग्री अक्रूरजी दे गये थे, वह सब तीन वर्षकी जगह छः महीनेमें ही साफ हो गयी। यहाँतक नौबत आ गयी कि घरकी एक-एक चीज बेचकर भगवान्‌का भोग लगाया जाता और साधु-सन्तोंको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा की जाती। परंतु यह अवस्था भी कबतक चलती। थोड़े दिनोंमें ही जो इनी-गिनी एक परिवारके कामके योग्य चीजें थीं, वे भी प्रायः समाप्त हो चलीं। अब परिवारका काम बड़े संकोचसे चलने लगा। परंतु इतना होनेपर भी भक्तराज एकदम निश्चिन्त थे। स्वप्नमें भी यह चिन्ता उनके शान्त मनको स्पर्श नहीं करती थी कि कल क्या होगा। बस, जैसे चलता था वैसे चलता था और वह अपने नित्यके भजन-कीर्तनमें मस्त थे।

उन्हीं दिनों एक नयी आफत उनके सिर आ गयी। ऊनासे श्रीरंगधर मेहताके कुल-पुरोहित कुँवरबाईको विदा करा ले जानेके लिये आ पहुँचे। उस दिन प्रातःकालसे ही भक्तराज किसी स्थानपर भजन करनेके लिये गये हुए थे।

पुरोहितजीने आकर प्रश्न किया—'मेहताजी कहाँ गये हैं?'

'कहीं बाहर गये हैं; पधारिये महाराज!' रसोई करती हुई माणिकबाईने उत्तर दिया।

पुरोहितजीने भीतर आकर अपना नाम, ठाम तथा आनेका कारण विस्तारपूर्वक सुनाया। माणिकबाईने आसन बिछा दिया और यथोचित आदर-सत्कार किया। पुरोहितजी आसनपर बैठ गये।

माणिकबाई पुत्रीकी विदाई सुनकर मन-ही-मन सोचने लगी—'अब क्या होगा? भक्तराज तो दिन-रात भक्तिमें लीन रहते हैं, कोई काम-काज करते नहीं। जहाँ नित्य भोजनकी ही चिन्ता लगी रहती है, वहाँ कुँवरबाईके दहेजका क्या प्रबन्ध होगा? यदि बिना दहेज पुत्रीको विदा कर दूँ तो नात-जातमें बड़ी निन्दा होगी।'

थोड़ी देर बाद मेहताजी घर लौट आये। तबतक रसोई भी तैयार हो चुकी थी, केवल उनके आनेकी ही देर थी। आते ही उन्होंने प्रश्न किया—'सती! भोगमें अब क्या विलम्ब है?'

'कुछ देर नहीं, ला रही हूँ' यह कहते हुए माणिकबाई भोगकी सारी सामग्री एक थालमें परोसकर ले आयी। भक्तराजने भक्तिपूर्वक भगवान्‌को नैवेद्य समर्पित किया। तत्पश्चात् स्वयं प्रसाद पानेकी तैयारी करने लगे। उन्होंने पूछा—'आज कोई साधु-सन्त आये हैं या नहीं?'

माणिकबाईने उत्तर दिया—'आज कोई साधु-सन्त तो नहीं हैं; एक अतिथि आये हैं।'

'अक्रूरजी तो नहीं आ गये?' मेहताजीने हँसते हुए कहा।

'नहीं, कुँवरबाईको लिवा जानेके लिये श्रीरंगधर मेहताके पुरोहितजी आये हैं। मैं तो इसी चिन्तामें पड़ी हूँ कि पुत्रीको विदा करने तथा दहेज आदिके लिये कम-से-कम इस समय सौ रुपये चाहिये। परन्तु जहाँ एक भी नहीं, वहाँ सौकी बात भी कैसे की जाय?' इतना कहते हुए माणिकबाईने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा।

भक्तराज पत्नीको चिन्ताकुल देख बड़ी शान्तिसे समझाने लगे—'साध्वी! मेरा-मेरा करती हुई तू इतनी चिन्ता क्यों करती है? इन पुत्र-पुत्रीके हम तो नामके माता-पिता हैं, वास्तविक पिता तो हम सबके वह श्रीपति भगवान् ही हैं और वह सब तरहसे समर्थ हैं। फिर हम व्यर्थ क्यों चिन्ता करें? उनको तो स्वयं ही चिन्ता होगी और जैसी रुचि होगी, वैसा वह ठीक समयपर अपने ही प्रबन्ध कर देंगे।'

'नाथ! कल तो पुत्रीको भेजना होगा और आजतक उसे देनेके लिये एक वस्त्रतकका ठिकाना नहीं। परमात्मा कहाँ रहते हैं जो ऐन मौकेपर कल आकर उसे सारी वस्तुएँ दे जायँगे। जिसका नाम-ठाम नहीं, उसका विश्वास ही क्या।' चिन्ताके मारे माणिकबाईकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी।

'प्रिये! 'मैं' और 'मेरा' ये दो शब्द ही मायाके रचे हुए जालरूप हैं, दुःखके कारण हैं। सन्त-वैरागी, योगी-

यती, सती और राजासे लेकर रंकतक प्राय: संसारके सभी प्राणी उसी जालसे बँधकर चौरासीका चक्कर भोग रहे हैं। अतएव अहंता-ममताका त्याग ही संसारका सच्चा त्याग है। सुनो—

(प्रभात)

समरने श्रीहरि मेल ममता परी जोने विचारीने मूल तारूँ।
तुं अल्या कोण ने कोने वलगी रह्यो, वगर समजे कहे म्हारूँ म्हारूँ॥
देह तारी नथी जो तुं जुगते करी, राखतां नव रहे निश्चे जाये।
देह संबंध तजे अवनबा बहु थशे, पुत्र कलत्र परिवार व्याहे॥
धन तणूं ध्यान तुं अहोनिश आदरे, एज तारे अंतराय मोटी।
पासे छे पीयु अल्ला तेने नव परखियो, हाथथी बाजी गयी थयोरे खोटी॥
भरनिद्रा भर्यो रोंधि घेर्यो धणो, संतना शब्द सुणी कां न जागे।
न जागतां तरसैया लाज छे अति घणी, जन्मोजन्म तारी खांत भागे॥

[तात्पर्य हे मन! ममताको दूर कर परमात्माका भजन कर; इस संसारमें तेरी कौन वस्तु है, इसका विचार कर। अरे मूर्ख! तू कौन है? कहाँसे आया है? किससे तेरा क्या सम्बन्ध है? तू बिना समझे 'मेरा-मेरा' क्यों बक रहा है।]

जिस देहका तू अनेक युक्तियोंसे जतन कर रहा है, वह कदापि स्थिर रहनेवाला नहीं है। तू अहर्निश जो धनका ध्यान कर रहा है, वह तेरे अन्त:करणमें बाधास्वरूप है।

समीपके पति (परमात्मा)-को तू क्यों भूल गया। अहंकारके नशेमें चूर होकर तू मोहनिद्रामें सो रहा है। अत:

हे मन! तू जग जा, नरसिंहरामको तो तेरी बड़ी भारी आशा है (कि तू अच्छी भक्ति करेगा)।

भक्तराजने तुरंत यह पद बनाकर सुना दिया। माणिकबाईकी चिन्ता एक बार दूर हो गयी और भगवान्‌में श्रद्धा बढ़ जानेसे उनका चित्त प्रसन्न हो गया। फिर उन्होंने अतिथि और पतिके लिये आसन लगाकर भोजन परोसा। मेहताजी पुरोहितजीके साथ बैठकर भोजन करने लगे।

भोजन करते-करते पुरोहितजीने वार्तालाप शुरू किया—'मेहताजी! श्रीरंगधरजी मेहताने मुझे कुँवरबाईको लानेके लिये भेजा है। मैं उनका कुलपुरोहित हूँ। मैं कल ही यहाँसे विदा हो जाना चाहता हूँ। आप कृपाकर शीघ्रता करें।'

'गुरु महाराज! इतनी जल्दी करनेसे काम कैसे चलेगा? अभीतक तो पुत्रीके लिये एक नया वस्त्र भी तैयार नहीं किया है। आपको दो-चार दिन ठहरना पड़ेगा।' माणिकबाईने चट उत्तर दे दिया।

'आपको जो-जो वस्तुएँ तैयार करनी हों, उन्हें आज ही कर लीजिये। कल तो कृपा करके मुझे विदा कर ही दीजिये।' पुरोहितजीने आग्रह प्रकट किया।

'महाराज! हमें कोई वस्तु तैयार करनेकी चिन्ता नहीं; जो कुछ करना है, उसे मेरे भगवान् करेंगे। परंतु जबतक मेरी कुल-मर्यादाके अनुसार दहेजका प्रबन्ध परमात्माकी ओरसे नहीं हो जाता तबतक तो आपको ठहरना ही होगा।' भक्तराजने हँसते-हँसते कहा।

भक्तराजकी यह बात पुरोहितजीकी समझमें बिलकुल नहीं

आयी। उन्होंने आश्चर्यके साथ कहा—'मेहताजी! आप क्या कहना चाहते हैं, कुछ समझमें नहीं आता। आपके परमात्मा कबतक आकर आपकी पुत्रीके दहेजके लिये सामग्री पहुँचा जायँगे? ऐसी बातें तो न कहीं सुनी गयीं, न देखी गयीं। मालूम नहीं क्यों आप इस तरहकी अनहोनी बात मुँहसे निकाल रहे हैं।'

'पुरोहित महाराज! घबड़ाइये नहीं, भगवान्‌की माया तो 'अघटनघटनापटीयसी' कहलाती ही है, उसके लिये कुछ भी अनहोनी नहीं। श्रद्धा रखिये, द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण बड़े भक्तवत्सल और दयालु हैं; जो कुछ करेंगे, अच्छा ही करेंगे।' नरसिंहरामने विश्वासपूर्ण स्वरमें कहा।

भक्तराजकी ऐसी विचित्र बात भला पुरोहितजीके कैसे समझमें आती? परंतु वह कर भी क्या सकते थे। आखिर नरसिंहराम उनके प्रिय यजमान श्रीरंगधर मेहताके सम्बन्धी थे; सहसा उनके विरुद्ध कड़ा व्यवहार कैसे करते। उन्होंने चुप रहना ही उचित समझा।

दो-तीन दिन पुरोहितजी चुपचाप पड़े रहे। परंतु उन्होंने फिर भी कोई विशेष तैयारी नहीं देखी। भक्तराज निश्चिन्त अपने भजन-पूजनमें लगे हुए थे, मानो दूसरा कोई कार्य ही सामने न हो। अन्तमें पुरोहितजीने झुझलाकर कहा—'मेहताजी! आज तीन-चार दिन मुझे आपके घर बैठे हुए हो गये; परंतु आप तो बिलकुल निश्चिन्त होकर भजन-पूजनमें लगे हैं। मैं अब अधिक दिन नहीं ठहर सकता। दहेजका प्रबन्ध हो या न हो, कल कुँवरबाईको लेकर मैं अवश्य विदा हो जाऊँगा।'

'पुरोहितजी ठीक ही कह रहे हैं। पीछे आप सुखपूर्वक

भजन करते रहियेगा। पुत्रीके लिये आज ही वस्त्रादि दहेजकी पूरी तैयारी करा दीजिये।' माणिकबाईने भी कहा।

'अच्छा' जब तुम्हारी भी ऐसी ही इच्छा है तो आज अपने नाथका आवाहन करूँगा; देखें, उनकी कैसी कृपा होती है।' नरसिंहरामने सहजभावसे कहा।

सन्ध्यासमय भक्तराज कृष्ण-मन्दिरमें पहुँच गये और हाथमें करताल लेकर भगवान्‌के भजनमें दत्तचित्त हो गये। माणिकबाई तथा शामलदास भी आकर शामिल हो गये। शामलदास मृदंग बजा रहे थे। पुरोहितजी अलग अपने आसनपर पड़े-पड़े सोचने लगे—यह सब क्या पागलपन कर रहे हैं? ऐसे उछलने-कूदने तथा चिल्लानेसे क्या भगवान् आ जायँगे? यदि इस प्रकार भगवान्‌का साक्षात्कार हो जाय तब तो सारा संसार ही भगवान्‌को अपने वशमें कर ले। खैर, इससे मुझे क्या? मैं तो कल अवश्य जाऊँगा, चाहे भगवान् प्रकट होकर दहेज पहुँचा जायें या न पहुँचायें।'

पुरोहितजी इसी उधेड़-बुनमें पड़े हुए थे कि अकस्मात् उनके कानोंमें 'बोलो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय' की आवाज आ पड़ी। वह झट खड़े हो गये और जैसे बटन दबाते ही मशीन चल पड़ती है वैसे ही एकाएक मन्दिरकी ओर दौड़ पड़े। वहाँ जाकर क्या देखते हैं कि साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हार, कंकण, साड़ियाँ आदि दहेजकी अनेक वस्तुएँ दे रहे हैं और स्वयं श्रीलक्ष्मीजी सभी चीजें अपने हाथों कुँवरबाईको पहना रही हैं। भक्तराज तथा माणिकबाई तो दोनों ओर हाथ जोड़े खड़े हैं और शामलदास

भगवान्‌के चरणोंमें साष्टांग दण्डवत् पड़ा हुआ है। वह अन्ततक इस दृश्यको चित्रवत् देखते रहे।

नरसिंहरामको सकुटुम्ब निश्चिन्त और प्रसन्न करके तथा कुँवरबाईको वस्त्राभूषण आदि दहेजकी वस्तुओंसे सन्तुष्ट करके भगवान् लक्ष्मीजीके साथ अन्तर्हित हो गये। दूसरे दिन कुँवरबाई पुरोहितजीके साथ प्रसन्नतापूर्वक विदा हो गयी। पुरोहितजी भी भक्तके संगसे कृतार्थ हो गये।

पुत्रकी सगाई

भक्तभावन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे भक्तराज कुँवरबाईकी विदाईकी चिन्तासे मुक्त हो गये। अब निश्चिन्त होकर वह अपना जीवन पूर्ववत् केवल भजन-पूजनमें व्यतीत करने लगे। उनके भजन-पूजन और साधुसेवाकी चर्चा नगरभरमें खूब फैल गयी थी। अतएव उनकी जातिके लोग अब उनसे असन्तुष्ट रहने लगे थे। जातिके गण्यमान्य लोग तो उनसे घृणा करते थे और उनसे मिलना-जुलना भी अपनी प्रतिष्ठाके विरुद्ध समझते थे। परन्तु परमभागवत नरसिंहरामको इन बातोंकी तनिक भी परवा नहीं थी। सच्चे भक्त इस ओर ध्यान ही नहीं देते कि दुनिया उनके विषयमें क्या कहती-सुनती या समझती है। वे तो केवल एक इसी विचारमें मग्न रहते हैं कि हमारे प्रियतम भगवान् किस बातसे प्रसन्न होते हैं। संसारकी बातें सुननेको उन्हें स्वप्नमें भी फुरसत नहीं मिलती—या यों कहें कि भगवान्के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुकी सत्ता ही उनकी दृष्टिमें नहीं रहती, फिर दूसरी ओर ध्यान ही कैसे जाय?

भक्तराजके पुत्र शामलदासकी अवस्था धीरे-धीरे बारह वर्षकी हो गयी। माणिकबाईने देखा कि अब लड़का भी विवाहयोग्य होनेको आया और हमारे घरमें खानेका भी ठिकाना नहीं है। गरीबके घर अपनी पुत्री कौन देना चाहेगा? और कुल-परिवारके लोग भी प्रसन्न नहीं जो इस काममें सहायता करेंगे, वे तो यही कारण दिखाकर उलटे बाधक हो सकते हैं। ऐसी स्थितिमें तो पुत्रका विवाह होना कठिन ही प्रतीत होता है। एक दिन उसने अपनी चिन्ता पतिपर प्रकट की। पतिने कहा—'प्रिये! तुम व्यर्थ दुःख क्यों करती

हो? चिन्ता छोड़ो, केवल श्रीकृष्णका ध्यान करो, सदा मनमें उन्हींको रखो। वह दयालु प्रभु अपने-आप हमारे सारे कार्य यथासमय करते रहेंगे; वह स्वयं हमसे अधिक हमारे लिये चिन्तित होंगे।'

उन्हीं दिनों गुजरातके बड़नगर नामक शहरके रहनेवाले मदन मेहताकी पुत्रीके लिये एक सुयोग्य वरकी खोज चल रही थी। मदन मेहता एक प्रतिष्ठित नागर गृहस्थ थे। वह स्वयं एक राज्यके दीवानके पदपर थे और आठ-दस लाखकी सम्पत्ति भी उनके पास थी। उनकी रूप-शीलसे युक्त पुत्री जूठीबाई* विवाहयोग्य हो गयी थी। उन्होंने कई जगह सुयोग्य वरकी खोज की, परंतु कहीं उनका मन नहीं जमा। अन्तमें कुल-परिवारके लोगोंको एकत्रकर उन्होंने पूछा कि पुत्रीका विवाह कहाँ करना चाहिये। सब लोगोंने राय दी कि आसपास तो आपके योग्य कोई गृहस्थ नहीं। जूनागढ़में हमारी जातिके सात सौ घर बसते हैं। अतः वहाँ कोई योग्य घर अवश्य मिल जायगा।

सगे-सम्बन्धियोंकी सलाहके अनुसार मदन मेहताने अपने कुल-पुरोहितको एक सुन्दर, सुशील, कुलीन और गुणवान् वरकी खोज करनेके लिये वाहन तथा द्रव्यादि देकर जूनागढ़ भेज दिया। मदन मेहताके एक सहपाठी मित्र सारंगधर जूनागढ़में रहते थे। अतः उन्होंने उनके नाम एक पत्र भी पुरोहितजीको दे दिया। पुरोहितजीको सब लोग दीक्षित नामसे पुकारा करते थे।

जूनागढ़के जिस मुहल्लेमें नागर लोगोंकी घनी बस्ती थी,

* कहीं-कहीं उसका नाम सुरसेना भी मिलता है।

उसके बीचमें एक चबूतरा बना हुआ था, जिसपर शामको बहुत-से लोग बैठकर गपशप किया करते थे। उस दिन भी कुछ लोग बैठकर बातें कर रहे थे कि दीक्षितजीका रथ आकर खड़ा हुआ। सब लोगोंका ध्यान उस ओर आकृष्ट हो गया। दीक्षितजीने पूछा—'महोदय! सारंगधरजी मेहताका घर कहाँपर है?'

सारंगधर मेहता नागर-जातिका एक प्रतिष्ठित गृहस्थ था। उस समय वह भी वहाँ मौजूद था। उसने उत्तर दिया—'कहिये महोदय! आप कहाँसे पधार रहे हैं, क्या काम है? मुझे ही लोग सारंगधर कहते हैं।'

दीक्षितजीने रथसे उतरकर यजमानकी दी हुई चिट्ठी उसके हाथमें दे दी। चिट्ठी खोलकर वह बाँचने लगा—

प्रिय मित्र श्रीसारंगधरजी!

सप्रेम प्रणाम।

आपके पास अपने कुलपुरोहित श्रीदीक्षितजीको भेज रहा हूँ। मेरी पुत्री जूठीबाईकी अवस्था अब विवाहयोग्य हो गयी है। कृपाकर अपने यहाँ किसी कुलीन घरमें एक रूप-शीलयुक्त सुयोग्य घर देखकर सम्बन्ध करा दीजियेगा। आपको अपना अभिन्न मित्र जानकर यह कष्ट दे रहा हूँ।

आपका—मदन मेहता।

सारंगधर पत्र पढ़कर उठ खड़ा हुआ और दीक्षितजीको लेकर अपने घर आया। दीक्षितजीका उचित सत्कार कर उसने अपने मित्र मदनरायजीका कुशल समाचार पूछा—

बात-की-बातमें यह समाचार सारी नागर-जातिमें फैल गया कि बड़नगरसे एक पुरोहितजी वरकी खोजमें आये हैं। चारों ओरसे एक-न-एक बहाना लेकर लोग सारंगधरके घरपर एकत्र होने लगे। जो आता, वही पहले अनजानकी तरह दीक्षितजीकी

ओर इशारा करते हुए प्रश्न करता—'कहिये सारंगधरजी! आप महोदय कौन हैं?' सारंगधर सबको यही उत्तर देता—'आप बड़नगरके मेरे मित्र मदनरायजीके पुरोहित हैं। मेरे मित्रकी कन्याके लिये एक सुयोग्य वरकी खोजमें आये हैं।'

वरकी खोजमें आये हुए मनुष्यको देखकर प्राय: गृहस्थ लोग चंचल हो उठते हैं। जो लोग विशेष स्वार्थी होते हैं, उनका तो कहना ही क्या? वे तो येन केन प्रकारेण अपना काम बनानेके लिये बेचैन हो उठते हैं। ऐसे कुछ लोग जो वहाँ बैठे थे, अपनेको रोक न सके। उन्होंने अपनी राय प्रकट करना शुरू कर दिया। किसीने प्रकारान्तरसे अपने पुत्रका ही गुणगान कर डाला। किसीने अपने मित्रकी कुलीनताका बखान किया। किसीने अपने सम्बन्धीकी उन्नतिका रोचक वर्णन सुनाया। किसीने व्यापारचतुर वरका, किसीने उच्चपदस्थ वरका, किसीने सुन्दर और सुशील वरका और किसीने विद्याव्यसनी वरका पता बताया। दीक्षितजी चुपचाप सब बातें सुनते रहे।

दूसरे दिन सारंगधर दीक्षितजीको साथ लेकर घर-वर दिखाने चला। उसने अपने मित्र कृष्णरायकी रास्तेमें खूब प्रशंसा की और उनके दरवाजेपर पहुँचा। कृष्णरायने दीक्षितजीका खूब आदर-सत्कार किया; प्रकारान्तरसे अपने धन और प्रतिष्ठाका भी कुछ जिक्र कर डाला और पुत्रको कपड़े-लत्तेसे सजाकर सामने बिठा दिया। दीक्षितजीने उससे पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है?' परन्तु वह चुप रहा। दीक्षितजीने पुन: वही प्रश्न दुहराया। लड़केने कुछ घबड़ाहटके साथ पूछा—'क्या पूछ रहे हैं?' बस, दीक्षितजीने ताड़ लिया कि लड़का बधिर है। उन्होंने सारंगधरसे वहाँसे उठनेका संकेत किया।

वहाँसे उठकर सारंगधर आगे बढ़ा। उसने कृष्णरायका पुत्र

दिखानेकी यथार्थताको समझानेकी चेष्टा की और फिर दूसरे मित्र अतिसुखरायकी और भी बड़ाई की। अतिसुखरायने भी दीक्षितजीको आकृष्ट करनेका भरपूर प्रयत्न किया। दरवाजेपर बैठे हुए कुछ गाँवके लोगोंने भी उनकी प्रशंसाका पुल बाँध दिया। जब अतिसुखरायका पुत्र गहने-वस्त्रसे सजकर सामने आया तो दीक्षितजीने उससे भी प्रश्न किया—'तुम्हारा नाम क्या है?' लड़केने तुतली आवाजमें उत्तर दिया—'वि··वि·· वि··द्याधर···र···र···राय।' दीक्षितजीने फिर आगे कुछ न पूछ सारंगधरको उठनेके लिये कहा।

इस प्रकार कई दिनोंतक घूम-फिरकर अपने हित-मित्र और जातिके प्रायः सैकड़ों लड़कोंको सारंगधरने दिखाया। परन्तु दीक्षितजीकी दृष्टिमें एक भी लड़का नहीं चढ़ा। किसीको बधिर, किसीको तुतला, किसीको मूर्ख, किसीको कुरूप इत्यादि एक-न-एक कारण दिखाकर उन्होंने सबको छाँट दिया। स्वयं दीक्षितजी भी अयोग्य लड़कोंको देखते-देखते तंग आ गये। उन्हें सन्देह हो गया कि शायद सारंगधर योग्य वर दिखानेकी अपेक्षा अपने सगे-सम्बन्धी और मित्रोंके लड़के दिखानेकी अधिक चिन्ता रखता है। अब उनका मन सारंगधरपर विश्वास करनेकी गवाही नहीं देता था। परंतु मदन मेहताने जब सारंगधरको अपना मित्र समझकर उसके पास उन्हें भेजा था, तब वह उसके विरुद्ध कैसे चल सकते थे? अतएव उन्होंने सारंगधरसे कहा—'मेहताजी! केवल कुलीन या सुन्दर लड़का मुझे नहीं चाहिये, लड़का गुणवान् भी होना चाहिये। आपने बहुत-से लड़के दिखाये, परन्तु सुयोग्य वर एक भी दिखायी नहीं पड़ा।'

सारंगधर भी इधर दीक्षितजीकी चालसे तंग आ गया था।

उसने सोचा—यह बड़ा विलक्षण आदमी है। इसे कोई लड़का पसन्द ही नहीं आता। यह अपनेको बड़ा चालाक समझता है। अब मैं भी ऐसा घर बताता हूँ कि यह भी याद रखेगा। सारंगधरने मुसकराते हुए दीक्षितजीसे कहा—'दीक्षितजी! आप मेरी जातिके सैकड़ों लड़के देख चुके। अब मैं अपनी जातिके मुखियाका एक लड़का दिखाता हूँ। मुझे आशा है, वह लड़का आपको अवश्य पसन्द आ जायगा। बहुत तरहकी चीजें दिखानेके बाद अच्छी चीज दिखानेपर ही उसका मूल्य ठीक समझमें आता है।'

दीक्षितजीने कहा—'अच्छा, अन्तमें ही दिखाइये, पर दिखाइये सुयोग्य वर, अब अधिक तरहकी चीजें देखनेकी मेरी इच्छा नहीं है। अब तो काम खतम करके मैं शीघ्र वापस होना चाहता हूँ।'

सारंगधरने मनमें मजाकका भाव लेकर दूरसे ही इशारा करते हुए कहा—'वह देखिये स्वर्ण-कलशवाला जो मन्दिर दिखायी देता है, वह नरसिंहरामजी मेहताका घर है। वे बड़े ही कुलीन और भगवद्भक्त गृहस्थ हैं। उनका व्यवहार बड़ा सच्चा है और उन्होंने धन भी खूब एकत्र कर रखा है। उनका पुत्र भी हर तरहसे योग्य है। वहाँ आपको पूर्ण सन्तोष होगा। वहाँ मेरे जानेकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं।'

'अच्छा महाराज! नमस्कार। मैं अभी वहाँ जाता हूँ। यदि सब प्रकारसे सन्तोष हो जायगा तो मैं अवश्य सम्बन्ध कर लूँगा और नहीं तो किसी दूसरे स्थानके लिये रवाना हो जाऊँगा। बस, आज्ञा दीजिये।' इस तरह कहते हुए दीक्षितजीने विदा माँगी।

'अच्छा महाराज! नमस्कार।' कहकर सारंगधरने भी मस्तक झुकाया और हाथ जोड़कर विदा किया।

दीक्षितजी तुरन्त नरसिंहरामके घर पहुँचे। उस दिन कोई

व्रत-उत्सव था। भक्तराज हरिकीर्तनमें संलग्न थे। उनकी एकाग्रता और तन्मयता देखकर दीक्षितजी दंग रह गये। उन्होंने मनमें विचार किया, 'भगवान्‌की लीला भी विचित्र है। सारे जूनागढ़में केवल यही एक घर ऐसा मिला है जहाँ आते ही चित्तको शान्ति प्राप्त हुई है। यह घर जैसा पवित्र है वैसा ही यदि वर भी मिल जाय तो मदन मेहताकी पुत्रीका भाग्य ही खुल जाय।'

दीक्षितजीको यथोचित सत्कार करके बैठा दिया गया। मध्याह्न-समय हरिकीर्तन समाप्त हुआ। दीक्षितजीने भक्तराजके पास आकर अभिवादन किया। भक्तराजने उन्हें भगवान्‌का प्रसाद देकर प्रश्न किया—'आपका शुभ निवास कहाँ है?'

'भक्तराज! मैं बड़नगरके दीवान मदनरायजीकी पुत्रीका सम्बन्ध करनेके लिये यहाँ कुछ दिनोंसे आया हुआ हूँ। सौभाग्यसे आज आपके दर्शन करनेका भी सुअवसर प्राप्त हुआ है। सुना है, आपके भी एक विवाहयोग्य पुत्र है। कृपया उसे मुझे दिखाइये।' दीक्षितजीने नम्रतापूर्वक कहा।

'महोदय! इस शहरमें सात सौ नागर गृहस्थोंके घर हैं और प्रायः सभी धनाढ्य और कुलीन हैं। आप तो जानते ही हैं कि—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतिमान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते॥

अर्थात् 'जिसके पास धन है, वही मनुष्य कुलीन है, वही पण्डित है, वही वेदविद् है, वही गुणवान् है, वही वक्ता है और वही दर्शनीय है। सब गुण एक कंचनका ही आश्रय करके रहते हैं।' इस नीतिके अनुसार 'न तो मैं कुलीन हूँ, न गुणवान् और

न पण्डित ही। मैं तो केवल राधेश्यामका नाममात्र जानता हूँ।' नरसिंहरामने साफ-साफ अपनी सच्ची परिस्थितिका वर्णन कर दिया।

'भक्तशिरोमणि! लक्ष्मी तो चंचला है; वह कभी आती है और कभी चली जाती है। जो मनुष्य आज अतुल धनका स्वामी है, कल वही रास्तेपर भीख माँगते हुए देखा जाता है। इसलिये महात्मा लोग द्रव्यवान्को सच्चा धनवान् नहीं मानते।' कबीरदासजी कहते हैं—

कबिरा सब जग निर्धना, धनवंता नहिं कोइ।
धनवंता सोइ जानिये रामधनी जो होइ॥

'इस संसारमें सब निर्धन ही हैं, कोई धनवान् नहीं है। धनवान् तो उसे ही जानना चाहिये जिसके पास रामधन हो।' 'महाराज! केवल आपके पास ही वह सच्चा रामधन है, यह मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। अतः आप मुझे भ्रममें न डालिये और अपने पुत्रको मुझे दिखाइये।' दीक्षितजीने सच्चे धनकी व्याख्या करते हुए कहा।

मेहताजीने शामलदासको बुलाया। परमात्माकी कृपासे दीक्षितजीको शामलदासजीका मुखमण्डल चन्द्रमाके समान सुकान्तियुक्त दिखायी पड़ा। उसकी अलौकिक तेजस्वी मूर्तिको देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने सामुद्रिक विद्याके अनुसार शामलदासमें अनेक शुभ लक्षण देखे। उन्होंने तुरन्त शामलदासके हाथमें श्रीफल तथा स्वर्णमुद्रा देकर ललाटपर तिलक कर दिया। फिर प्रसन्नताके साथ वह बोले—'भक्तराज! मदनरायकी पुत्री जूठीबाईके साथ आज मैं शामलदासका सम्बन्ध करता हूँ।'

'जैसी परमात्माकी इच्छा' कहकर भक्तराजने अपनी निर्लिप्तता

प्रकट की। इतनेमें ही माणिकबाई भी वहाँ पहुँच गयी। पुत्रका सम्बन्ध हो जानेकी बात जानकर माताका हृदय कितना पुलकित हुआ, इसे कौन कह सकता है। इस निर्धनतामें भी अपने इस सौभाग्यकी बात सोचकर आनन्दके मारे उसके नेत्र गीले हो गये।

दूसरे दिन दीक्षितजी बड़नगरके लिये विदा हो गये। उन्होंने बड़नगर पहुँचकर अपने यजमानके सामने नरसिंहरामकी अपूर्व भक्ति, सज्जनता, सचाई आदिका खूब बखान किया। शामलदासके रूप, शील और सुलक्षणका वर्णन करते हुए जूठीबाईके सौभाग्यके लिये उसे बधाई दी। मदनरायका सारा परिवार उनके वर्णनको सुनकर बड़ा आनन्दित हुआ। नरसिंहरामकी निर्धनतापर मदनरायने बड़े उत्साहके साथ कहा कि — 'जब कुल-शीलादिमें वह सब तरहसे योग्य हैं तो फिर धनकी कोई चिन्ता नहीं। भगवान्ने भरपूर दिया है; सात-आठ लाखकी सम्पत्तिमेंसे एकाध लाख भी उन्हें दे देनेसे उनका कष्ट दूर हो जायगा।'

शामलदासका विवाह

जूनागढ़के नगरोंमें यह बात वायुवेगसे फैल गयी कि बड़नगरके मदन मेहताकी पुत्रीके साथ नरसिंहरामके पुत्रका सम्बन्ध हो गया। इस बातको सुनकर नरसिंहरामसे द्वेष रखनेवाले कितने ही नागर ब्राह्मणोंको मानो जूड़ी आ गयी। कहते हैं, दुष्ट लोग अपनी नाक कटाकर भी दूसरेका सगुन बिगाड़ते हैं। जूनागढ़के भी कुछ ब्राह्मणोंने इसी नीतिके अनुसार नरसिंहरामके पुत्रके विवाहमें विघ्न उपस्थित करनेकी ठानी। उन्होंने सारंगधरको अपना अगुआ बनाया और एक पत्र मदन मेहताके नाम लिखकर ब्राह्मणके हाथ बड़नगर भेज दिया।

दीक्षितजीके बड़नगर लौटनेके बादसे मदन मेहताने विवाहकी तैयारियाँ शुरू कर दी थीं। मकानकी सजावट हो रही थी; बारात ठहरनेके लिये स्थान बनाया जा रहा था; बारातके लिये भोजनादिका प्रबन्ध किया जा रहा था; बाजे-गाजेके सट्टे लिखे जा रहे थे; राज्यके बड़े-बड़े श्रीमन्तों, नगरके रईसों तथा सगे-सम्बन्धियोंको निमन्त्रण दिया जा रहा था। इकलौती पुत्रीका विवाह खूब सज-धजके साथ करनेके विचारसे सारा प्रबन्ध बड़ी सतर्कताके साथ हो रहा था। इसी बीच जूनागढ़का ब्राह्मण बड़नगर पहुँचा और उसने मदन मेहताको ले जाकर पत्र दे दिया। पत्रमें लिखा था—

श्रीयुत मदनरायजी!

आपकी इकलौती पुत्रीका सम्बन्ध जोड़नेके लिये आपके पुरोहित दीक्षितजी जूनागढ़ आये थे। आपको मालूम होगा

कि जूनागढ़में हमारे सात सौ घर हैं; परंतु उन्होंने किसी योग्य घरमें सम्बन्ध न करके अत्यन्त निर्धन और जातिच्युत नरसिंहरामके पुत्रके साथ सम्बन्ध जोड़ दिया है। हम आपको नम्रतापूर्वक सूचित करते हैं कि घर बिलकुल आपके योग्य नहीं। घर-घर भीख माँगनेवाला तथा जोगी-वैरागियोंका संग करनेवाला मनुष्य भला बड़नगरके दीवानका कैसे सम्बन्धी हो सकता है। अतः आप उस सम्बन्धको तोड़कर किसी सुयोग्य वरकी खोज करें, जिसमें आपकी मर्यादाको बट्टा न लगे। **विज्ञेषु किं बहुना।**

आपका—

सारंगधर

जूनागढ़के जातिमण्डलकी ओरसे।

पत्रको पढ़कर मदन मेहता बड़े विचारमें पड़ गये। उन्होंने सोचा कि सम्बन्ध हो गया, विवाहका दिन निश्चित हो गया। विवाहकी सारी तैयारियाँ हो गयीं; सर्वत्र आमन्त्रण भी चला गया। इज्जतका मामला ठहरा; क्या किया जाय; अकस्मात् उन्हें एक युक्ति सूझी। उन्होंने सोचा, एक पत्र जूनागढ़ भेज दें; उसके अनुकूल यदि नरसिंहराम आ गये तब तो विवाह करनेमें कोई हर्ज ही नहीं। अगर वह वैसा प्रबन्ध नहीं कर सकेंगे तब आप ही नहीं आवेंगे। दोनों दशाओंमें मेरी प्रतिष्ठा सुरक्षित है। उन्होंने तुरंत पत्र लिखकर एक ब्राह्मणके हाथ नरसिंहरामके पास जूनागढ़ भेज दिया। पत्रमें लिखा था—

सिद्धिश्री अनेक शुभोपमायोग्य श्रीयुत नरसिंहरामजी मेहताको बड़नगरसे मेहताका अनेक नमस्कार पहुँचे। आगे निवेदन है कि आपके सुपुत्र चि० श्रीशामलदासके साथ

मेरी पुत्री चि० जूठीबाईका शुभ विवाह शुभ मिति माघ शुक्ला पंचमीको होना निश्चित हुआ है। अतः आप उक्त तिथिपर हाथी, घोड़े, रथ और पैदल—एक चतुरंगिणी बृहत् बारातके साथ पधारियेगा और मेरी मर्यादाके अनुसार वस्त्राभूषण लाइयेगा। अगर बारात और वस्त्राभूषण मेरी मर्यादाके अनुकूल न आये तो मुझे बाध्य होकर अपनी पुत्रीका विवाह अन्यत्र करना पड़ेगा।

आपका—

मदनराय

बड़नगरसे ब्राह्मणने आकर पत्र नरसिंहरामके हाथमें दिया। पत्र पढ़कर वह श्रीकृष्णमन्दिरमें गये और करताल लेकर भगवत्-कीर्तन करने लगे। भक्तकी पुकार सुनकर भगवान् प्रकट हो गये। उन्होंने अमृतमयी वाणीसे कहा—'वत्स! तुझे मेरा आवाहन क्यों करना पड़ा।'

भक्तराज गद्गद होकर प्रभुके चरणोंपर लोट गये। फिर उठकर उन्होंने प्रभुके हाथोंमें वह पत्र दे दिया। पत्र पढ़कर भगवान्ने कहा—'वत्स! किसी तरहकी चिन्ता मत करो। मैं जानता हूँ यह सब जूनागढ़के ब्राह्मणोंकी करतूत है। मैं स्वयं अपने कुल-परिवारसहित नागरोंका वेष धारणकर सारी सामग्रीके साथ बारातमें उपस्थित होऊँगा और तुम्हारा कार्य सम्पन्न कराऊँगा।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। धन्य भक्तवत्सलता!

नरसिंहरामने बड़नगरके ब्राह्मणका उचित सत्कार करके विदाई कर दी और आप निश्चिन्त होकर भजन-पूजन करने लगे। माघ शुक्ला प्रतिपदाके दिन वह सिरपर चन्दन लगा, हाथमें करताल ले, दस-पाँच साधुओंके साथ पुत्रका विवाह

करनेके लिये जूनागढ़से चल पड़े। इस विचित्र बारातको देखकर माणिकबाईने पतिसे कहा—'स्वामिन्! यही सामग्री लेकर आप एक दीवानके घर जायँगे? कहीं अपमानित होकर बड़नगरसे पुत्रका विवाह करनेके बदले ज्यों-का-त्यों वापस न आना पड़े।' मेहताजीने सरल ढंगसे उत्तर दिया—'प्रिये! तुम बहुत अधीर हो जाती हो। जब मैंने मान लिया है कि मेरा पुत्र ही नहीं है, तब मेरा अपमान कैसा और इसकी चिन्ता क्यों? जिसका यह पुत्र है, वह आप ही सारा प्रबन्ध करेगा और अपमानसे बचनेकी चिन्ता भी करेगा।'

जूनागढ़के नागर ब्राह्मणोंने जब इस अनोखी बारातको देखा तो उनके आनन्दका ठिकाना न रहा। उन्होंने सोचा कि अब अपना काम आप ही बन जायगा। नरसिंहराम और उसके साथी उस दीक्षितकी भी सारी हेकड़ी सहज ही दूर हो जायगी। देखो न इस भिखमंगेकी हिम्मत! ऐरे-गैरे भिखमंगोंकी टोली बनाकर चला है दीवानकी बेटी ब्याहने! इस बार इसकी पोल खुलेगी। बड़नगरमें जब लोग लँगोटी और करताल छीनकर इसकी पूजा करेंगे तब यह सदाके लिये कीर्तन भूल जायगा और हमलोग भी सुखकी नींद सोयेंगे।

परंतु भक्तराजको काहेकी चिन्ता! वह तो बस कीर्तन करते हुए चले जा रहे थे। कुछ दूर जानेके बाद उन्होंने देखा कि एक बहुत बड़ी बारात डेरा-तम्बू डाले पड़ी है। समीप जाकर उन्होंने स्वयं भगवान्को गृहस्थरूपमें देखा और उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। फिर भक्तराजने प्रेमभरे स्वरमें कहा—'भगवन्! आप मेरे लिये इतना बृहत् स्वरूप

धारण करेंगे और मेरा कार्य सम्पन्न करायेंगे, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।'

'वत्स! इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? मैं तो सदा भक्तके अधीन रहता हूँ। भक्त जिस भावसे मुझे भजता है, उसीके अनुरूप मुझे स्वरूप धारण करना पड़ता है। क्या मैंने गोपियोंकी भावनाके अनुसार स्वरूप धारणकर उनकी इच्छापूर्ति नहीं की थी? बालक भक्त प्रह्लादको जिस समय विषपान कराया गया, उस समय क्या विषस्वरूप बनकर मैंने उसकी रक्षा नहीं की थी? पुत्र! अपने भक्तके लिये भी काम करना मेरे लिये दुष्कर नहीं है।' भगवान्ने नरसिंहरामका समाधान किया।

वहाँसे बारात बड़ी सज-धजके साथ रवाना हुई। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल—चतुरंगिणी बारात थी। अनेकों प्रकारके बाजे बज रहे थे। कितनी ही गाड़ियोंपर डेरे, तम्बू और सजावटके सामान लदे हुए थे। जब स्वयं द्वारिकाधीश भगवान्की ही बारात थी, तब उसमें कमी किस बातकी हो सकती थी? बारात निश्चित समयपर बड़नगर पहुँच गयी और एक स्थानपर आकर ठहर गयी। बारातका ठाट देखकर सब लोग यही कहते थे कि मानो कोई चक्रवर्ती राजा अपने पुत्रका विवाह करने आये हैं।

इधर मदन मेहताने भी अपनी हैसियतके अनुसार विवाहकी खूब तैयारी कर रखी थी। दूर-दूरके सगे-सम्बन्धी और मित्र श्रीमन्तलोग ब्याहमें सम्मिलित होनेके लिये आये थे। बारातका आगमन सुनकर वह सब लोगोंके साथ स्वागत करनेके लिये उस स्थानपर आये। नारायणी बारातकी अपूर्व शोभा देखकर वह चकित रह गये। उन्होंने सोचा—'ऐसी

बारात तो कोई राजा भी नहीं ला सकता था। जो मनुष्य मेरे यहाँ ब्याह करने आया है, वह कोई साधारण आदमी नहीं हो सकता। मैंने बड़ी भूल की जो इनको अभिमानभरा पत्र लिख भेजा। इस बारातका भोजनादिद्वारा सत्कार करना तो दूर रहा, मैं तो पर्याप्त जल भी नहीं पहुँचा सकता।' इस प्रकार सोचते हुए वह शीघ्र नरसिंह मेहतासे मिलनेके लिये आगे बढ़े। वह जब भगवान् श्रीकृष्णके डेरेके सामने आये तो उन्होंने अनुमान किया कि यही समधीका डेरा हो सकता है। उन्होंने पहरेदारसे खबर भेजी कि मदनराय मिलनेके लिये आये हैं। आज्ञा लेकर पहरेदार उन्हें अन्दर ले गया। उन्होंने भगवान्‌को प्रणाम करते हुए कहा— 'नरसिंहरामजी! आपको मैं प्रणाम करता हूँ।'

भगवान्‌ने किंचित् विनोदका भाव बनाकर कहा— 'मदनरायजी! मैं तो उनका एक तुच्छ सेवक हूँ। चलिये, मैं आपको उनके पास ले चलता हूँ।'

भगवान् उन्हें साथ लेकर भक्तराजके पास आये। भक्तराज अत्यन्त साधारण वेषमें कुछ भक्तोंके साथ बैठे हुए हरिकीर्तन कर रहे थे। वह भजनमें इतने तल्लीन हो रहे थे कि उन्हें बाहरी जगत्‌का कुछ भी ध्यान न था। उनकी इस स्थिति और अतुल ऐश्वर्यके बीच इस सादगीको देखकर मदन मेहताका सारा अभिमान चूर्ण हो गया। उन्होंने ऐसे सत्पुरुषको सम्बन्धीरूपमें पानेके लिये मन-ही-मन अपने भाग्यकी सराहना की।

भगवान्‌ने भक्तराजका ध्यान भंग करके मदनरायजीका परिचय कराया। दोनों समधियोंने एक-दूसरेको अभिवादन किया और प्रेमपूर्वक आलिंगन किया। कुशल-समाचार

होनेके बाद मदन मेहताने अपनी धृष्टताके लिये क्षमा माँगी और कहा—'भक्तराज! आपके साथ सम्बन्ध होनेके कारण आज मैं धन्य हो गया।'

'मेहताजी! यह सब प्रभुकी कृपाका ही परिणाम है।' भक्तराजने उत्तर दिया।

मदन मेहताने भगवान्‌के साथ नरसिंहरामका यथाशक्ति आतिथ्य-सत्कार किया तथा विधिपूर्वक वर-पूजन करके अपनी कन्याको दान कर दिया। बड़े समारोहके साथ विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। मदन मेहताने वस्त्र, अलंकार, रत्नादि बहुमूल्य वस्तुएँ दहेजमें देकर पुत्रीको विदा कर दिया।

इस प्रकार प्रणतपाल भगवान् भक्त-पुत्र शामलदासका विवाह-कार्य सम्पन्न करके सकुटुम्ब अन्तर्हित हो गये।

पुत्रकी मृत्यु

जो मनुष्य आज धनवान् है कल वही कंगाल हो जाता है; जो आज हृष्ट-पुष्ट, नीरोग है, वही कल कई रोगोंका शिकार हो जाता है, अचानक इस जीवनको खो बैठता है। इसीलिये हमारे प्राचीन गुरुजनों तथा महात्माओंने इस संसारकी नश्वरता दिखलानेके लिये इसे 'अभ्रच्छाया' की उपमा दी है। यह संसार एक क्षणके लिये भी एक स्थितिमें नहीं रहता—सदा बदलता रहता है। जब संसारकी ही यह दशा है तब संसारमें उद्भूत अन्य वस्तुओं तथा जीवोंकी अवस्थाका क्या पूछना?

भक्तराज नरसिंहरामपर भी संसारका यह चक्र घूमा। एक दिन जिस शामलदासका विवाह इतने धूम-धामसे किया गया, वह शामलदास विवाहके कुछ ही समय बाद अकस्मात् इस लोकसे सदाके लिये विदा हो गया।

परंतु संसारमें रहनेपर भी संसार-सागरकी उत्ताल तरंगोंद्वारा आन्दोलित होनेपर भी भगवान्के सच्चे भक्त उसके दागसे वंचित रहते हैं; बल्कि सांसारिक दुःखको वे भगवत्कृपा मानकर बड़े उल्लासके साथ वरण करते हैं। क्योंकि उनकी दृष्टिमें दुःख उनके भगवत्-प्रेमको और भी प्रगाढ़ बनाता है। यही कारण है कि कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णसे यह वरदान माँगा था—'हे भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे सदा दुःख ही दीजिये।' फिर परम भागवत नरसिंहरामको ही दुःख क्यों होता? उन्होंने तो पहले ही सब कुछ भगवान्का समझ रखा था और केवल भगवान्को ही अपना बना लिया था। भगवान् श्रीकृष्णका भजन निरन्तर करते-करते उनका हृदय भगवन्मय हो गया था, वह मानो भगवद्भक्तिरूप नौकाद्वारा दुस्तर शोकसागरको पार कर

चुके थे। एकलौते पुत्रकी मृत्यु तथा नवविवाहिता पुत्रवधूके वैधव्य-जैसे महान् सांसारिक दुःखसे वह लेशमात्र भी व्यथित न हुए, बल्कि पुत्रशोकाकुला माणिकबाईको सान्त्वना देनेके लिये उन्होंने उस अवसरपर यह पद भी गा दिया—

'भलु थयु भांगी जजाल
सुखे भजी शुं श्रीगोपाल।
(भला हुआ छूटा जंजाल,
ससुख भजेंगे श्रीगोपाल।)

पतिकी ऐसी दृढ़ता देखकर और उनके उपदेशसे प्रभावित होकर माणिकबाईका भी शोक दूर हो गया। दोनों पति-पत्नी भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे इस घटनाको एकदम भुलाकर आनन्दपूर्वक भगवद्भजन और साधुसेवामें पूर्ववत् जीवन बिताने लगे।

पिताका श्राद्ध

पुत्रवियोगके प्रायः छः मास बाद पितृपक्ष शुरू हुआ। गुजरात-काठियावाड़में प्रायः सभी लोग पितरोंके निमित्त एकोद्दिष्ट श्राद्ध विधिपूर्वक करके पिण्डदान करते हैं और उस दिन ब्राह्मण-भोजन कराते हैं। नरसिंह मेहताके पिताजीकी श्राद्धतिथि सप्तमी थी। वंशीधरने उस दिन श्राद्ध करनेका निश्चय किया था। अतएव उन्होंने एक दिन पूर्व अपने जाति-भाइयोंको भोजनका निमन्त्रण दे दिया। वह कुलके प्रथानुसार नरसिंहरामके घरपर भी निमन्त्रण देने आये। उन्होंने कहा—'नरसिंह! कल पिताजीकी श्राद्धतिथि है; अतएव मैं तुम्हें सकुटुम्ब भोजनका निमन्त्रण देता हूँ। अपनी स्त्रीको तो आज ही भेज देना; क्योंकि वहाँ कई तरहका काम-काज रहेगा। तुम भी कल प्रात:काल सात बजे ही आ जाना, वैरागियोंके अखाड़ेमें एक दिन मत जाना।

नरसिंहरामने बड़े शान्त चित्तसे उत्तर दिया—'भाई! साधु-सन्त तो मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। अत: मैं तो साधुओंकी सेवा करके ही आऊँगा। मेरी स्त्री भी भगवान्का नैवेद्य तैयार करनेके पश्चात् कल ही आयेगी।'

'ओहो! भीख माँग-माँगकर साधुसेवा करनेका दम्भ रखनेवालेका इतना मिजाज!·····यदि तू इतनी लापरवाही रखता है तो फिर पिताजीका श्राद्ध भी क्यों नहीं कर लेता? ***'पास न एक कौड़ी, बाजारमें दौड़ी'***—बस, यही तेरा हाल है।' वंशीधर क्रोधसे तमतमाते हुए बोले।

'भाई! जब आपकी आज्ञा है तो मैं अवश्य पिताजीका श्राद्ध करूँगा और अपनी शक्तिके अनुसार दो-चार ब्राह्मणोंको भोजन

करा दूँगा। श्राद्धमें सगे-सम्बन्धी तथा जाति-भाइयोंको भोजन कराना पारस्परिक व्यवहार है और उचित भी है; परंतु हमलोग जो '**श्रद्धया दीयते अनेनेति श्राद्धम्**'—इस शास्त्र-वाक्यको भुलाकर केवल नात-जातके लोगोंको स्वादिष्ट भोजन करानेमें ही अपने पितरोंका उद्धार समझते हैं, यह ठीक नहीं।' अपनी स्वाभाविक शान्तिके साथ नरसिंहरामने निवेदन किया।

इतना सुनते ही मानो वंशीधरके जलेपर नमक पड़ गया। क्रोधके मारे उनके नेत्र लाल हो गये और चुपचाप अपने घर आकर उन्होंने सारा हाल दुरितगौरीको सुना दिया। दुरितगौरीका भी पारा गरम हो गया, उसने देवरका सारा क्रोध अपने पतिपर ही उतारना शुरू किया; बोली—'तो तुम उस मुँहजलेके घरपर गये ही क्यों थे। मैं तो उन भगत-भगतानीको पहलेहीसे खूब पहचानती हूँ। यदि वे श्राद्धमें न आवें तो हमारा बिगड़ ही क्या जायगा? खजूरे (गिजाई)-का एक पैर टूट ही जाय तो क्या वह लँगड़ा हो जायगा?'

इधर भक्तराजने श्राद्ध करनेका निश्चय तो कर लिया; परंतु घरमें सेरभर भी अन्नका ठिकाना नहीं था। फिर भी भक्तराज निश्चिन्त थे। वह अपने एकमात्र स्वामी भगवान्‌के सामने बैठकर कीर्तन करने लगे। माणिकबाईने उन्हें निश्चिन्त देख उनके समीप जाकर कहा—'स्वामिनाथ! कल आपने पिताजीका श्राद्ध करनेका निश्चय किया है और घरमें सेरभर भी अन्न नहीं है। पहले उसका प्रबन्ध करना चाहिये।'

'प्रिये! पहले मुझे प्रभुका भजन कर लेने दो; उसके बाद मैं बाजार जाकर कुछ सामग्री कहींसे उधार लानेकी चेष्टा करूँगा। यदि उधार नहीं मिला तो मेरे नाथ जानें और पितर जानें।' भक्तराजने उत्तर दिया।

'स्वामिन्! हम उन परमात्माको नाथ तो मान ही बैठे हैं; परंतु उनके घर न्याय कहाँ है? देखिये भाईके घरपर तो इतनी अधिक सम्पत्ति है और हमें नित्य अपने पेटकी ही चिन्ता लगी रहती है।' इतना कहते-कहते माणिकबाईके नेत्रोंसे अश्रुधारा चलने लगी।

'साध्वी! तू बार-बार ऐसी घृणित अश्रद्धा प्रकट करते हुए वृथा क्यों भाषण करती है। आज भी तूने फिर मेरे नाथपर व्यर्थ दोषारोपण कर ही डाला। भगवान् बड़े न्यायी और दयालु हैं। उनके यहाँ पाप-पुण्यका न्याययुक्त बदला दिया जाता है। मेरा दुर्भाग्य है कि मेरी अर्धांगिनी होकर भी तेरे अन्दर श्रद्धाका अभाव है। प्रिये! मैं बार-बार कह चुका हूँ और आज भी कहता हूँ कि जो सच्चा सोना होता है, उसे ही घर्षण, छेदन, तापन तथा ताड़न आदि दुःखोंको सहते हुए कसौटीपर चढ़ना पड़ता है। स्वर्णकारको भी यही उचित है कि वह लोहादि धातुओंकी परीक्षा न कर खरे सोनेकी ही परीक्षा करे। वास्तवमें आज हम कसौटीपर हैं और ऐसी कसौटी ही मनुष्यत्वकी सच्ची परीक्षा है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उस परमपिताके दरबारमें कभी भूलकर भी अन्याय नहीं होता।' नरसिंहरामने खूब जोरदार शब्दोंमें पत्नीका समाधान किया।

'नाथ! क्षमा करें, अब मेरी आँखें खुल गयीं। अब अगर इससे भी अधिक कोई कष्ट आ पड़े तो मैं विचलित न होऊँगी और उस कृपालु जगन्नाथपर पूर्ण विश्वास रखूँगी। मेरे पास यह जो दो मासेका एक सोनेका कर्णभूषण है; इसे बेचकर आवश्यक सामग्री ले आइये और कलका काम चलाइये।' इतना कहते हुए माणिकबाईने आभूषण नरसिंहरामके हाथपर रख दिया।

सच्ची अर्धांगिनी वही है जो पतिकी आपत्तिमें उसे धैर्य प्रदान करे और उसके दु:खमें स्वयं भाग ले।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥

'धन नाश होनेपर ही स्त्रीकी परीक्षा होती है।'

माणिकबाईका आभूषण लेकर नरसिंहराम बाजारमें गये और उसे बेचकर उन्होंने जरूरी चीजें मोल लीं, केवल घृत लेना बाकी रह गया। अन्य सामान लेकर वह घरपर आये। माणिकबाईने सब चीजें देखनेके बाद कहा—'स्वामिन्! इतनी सामग्रीमें केवल छ:-सात मनुष्योंका भोजन हो सकेगा। अतएव आप तीन-चार ब्राह्मणों तथा पुरोहितजीको भोजनका निमन्त्रण दे आइये।'

मेहताजी नागरोंके चौरेपर आये। वहाँपर जातिके कई प्रतिष्ठित व्यक्ति बैठे थे। भक्तराजको देखकर प्रसन्नराय नामक एक नागर हँसते हुए बोला—'क्यों भक्तजी! किधरको शुभागमन हुआ है?'

'भाई! कल पिताजीका श्राद्ध है; अतएव दो-चार नागर भाइयों तथा पुरोहितजीको भोजनका निमन्त्रण देने आया हूँ।' नरसिंहरामने सरलतापूर्वक कहा।

'फिर दो-चार नागरोंको ही क्यों? बाकी लोगोंका क्या दोष है? क्या ये सब लोग आपके पिताजीके श्राद्धके अवसरपर आपके घरपर आकर भगवान्‌का प्रसाद नहीं पा सकते?' नागरजातिके पुरोहितने मजाकके ढंगपर कहा।

'महाराज! भगवत्प्रसादके तो सभी अधिकारी हैं। परंतु कल तो मेरे बड़े भाईके घर पितृश्राद्धके निमित्त सारी जातिका निमन्त्रण होगा ही; फिर मुझ अकिंचनके घर कौन भाई आना चाहेंगे?' नरसिंहरामने अभिमानरहित स्वरमें कहा।

'मेहताजी! वंशीधरके घरपर जातिभोजनका निमन्त्रण होनेपर भी आपको दुःख माननेका कोई कारण नहीं! आपके घर चलकर हम सब लोग भगवान्‌को समर्पित किया हुआ नैवेद्य अवश्य ग्रहण करेंगे और इस तरह अपने देहको पवित्र करेंगे। आपकी कामना भी पूर्ण हो जायगी। प्रसन्नरायने वकभक्ति प्रकट करते हुए कहा।

किसीकी कीर्तिको कलंकित करनेके लिये दुर्जन अत्यन्त नम्र बन जाते हैं। प्रसन्नरायके इस भावको वहाँ उपस्थित सभी नागरोंने संकेतद्वारा प्रोत्साहित किया। उन्होंने सोचा, आज यदि सारी जातिका निमन्त्रण नरसिंहराम दे दे तो बड़ा अच्छा हो। देखें, कहाँसे यह इतने आदमियोंके भोजनका प्रबन्ध करता है।

किंतु शुद्धहृदय मनुष्यको तो सर्वत्र अपनी तरह शुद्धता ही दिखायी देती है। नरसिंहरामने मनमें विचार किया कि जब जातिके सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति भगवत्प्रसादकी अपेक्षा रखते हैं तब उनका अनादर करना उचित नहीं। फिर एक बार जातिगंगाके आगमनसे मेरा घर पवित्र हो जायगा। इस प्रकारका भाव मनमें आते ही उन्होंने भगवान्‌का स्मरण किया और सोचा कि निमन्त्रण तो सारी जातिका दे ही दूँ, फिर परमात्माकी जो इच्छा होगी वह होगा ही! बस, उन्होंने पुरोहितजीसे कहा—'पुरोहितजी! आप सात सौ घरके सभी जातिभाइयोंको भोजनका निमन्त्रण दे आइये। कल सायंकाल श्रीद्वारिकाधीशकी जयध्वनि करती हुई जाति-भैया मेरी पर्णकुटीको पावन बनावेगी। यह भी एक आनन्दका विषय होगा।'

'जैसी आपकी आज्ञा' कहकर पुरोहितजी उठे और सभी जातिके लोगोंको सकुटुम्ब निमन्त्रण दे आये।

इस निमन्त्रणकी चर्चा सारी नागर-जातिमें फैल गयी। जो जिस तरहका आदमी था, वह वैसी कल्पना करता था, वैसी ही बातें सोचता था। कोई कहता, 'आज लोगोंने भगतको फँसा ही लिया; कभी उसका घर भी देखनेका मौका नहीं मिला था।' कोई कहता, 'अरे! यह सूखा निमन्त्रणभर ही है। गोपीचन्दन और करतालके सिवा उसके घर और रखा ही क्या है? वह वैरागी भला सारी जातिको कहाँसे भोजन करावेगा? जब भोजनके समयपर बुलावा आवे तब जानें।' कोई कहता, 'जो हो, हम कोई अन्न बिना मरते तो हैं नहीं! इसी बातसे यह निश्चय भी हो जायगा कि वह सच्चा भक्त है या उसने लोगोंको ठगनेके लिये वेष बना रखा है। यदि सच्चा होगा तो सबको भोजनसे सन्तुष्ट करके अपना वचन पूरा करेगा, अन्यथा अपना काला मुँह भी न दिखायेगा।' कोई कहता, 'अरे यार! उसने किसी ***'अक्लके अन्धे गाँठके पूरे'*** आदमीको अपने जालमें फँसाया होगा और उसीके बलपर आज इतनी उदारता एकाएक उसमें फूट पड़ी है।' इस प्रकार जितने मुँह उतनी बातें होने लगीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही भजनादिसे छुट्टी पाकर नरसिंहराम घीका पात्र लेकर बाजारमें चले। उन वीतराग महात्माको कहाँ मालूम था कि समस्त जातिके भोजनके लिये आवश्यक घृत इस छोटे-से पात्रमें आवेगा या नहीं। वह अपने भजनकी ही धुनमें घरसे निकल पड़े।

उन्हें देखते ही एक व्यापारीने प्रश्न किया—'क्यों मेहताजी कहाँ चले? कौन-सी चीज लेनेके लिये पधारे हैं? कोई साधु-मण्डली तो नहीं आयी है?'

'नहीं सेठजी! साधु-मण्डली नहीं आयी है। आज पितृश्राद्धमें

ब्राह्मणभोजन करानेके लिये दस मन घीकी आवश्यकता है। यदि अच्छा घृत हो तो दिखाइये।' भक्तराजने उत्तर दिया।

'घृतका मूल्य लेकर आये हैं या पीछे चुकाना चाहते हैं?' व्यापारीने पूछा।

'भाई! घृतका मूल्य अभी नहीं ले आया हूँ। एक मासमें अवश्य चुका दूँगा।' नरसिंहरामने कहा।

सेठने विचार किया कि यह निर्धन आदमी एक मासमें लगभग तीन सौ रुपया कहाँ पावेगा? कोई आमदनीका जरिया तो है नहीं। इतना अधिक उधार लगाना ठीक नहीं। उसने कहा—'भक्तराज! मेरे पास उतना घृत नहीं है; अतएव लाचार हूँ।'

नरसिंहराम आगे बढ़े। एक भगवद्भक्त व्यापारीने उनको प्रणाम करते हुए आगमनका कारण पूछा। नरसिंहरामके सब हाल सविस्तार बता देनेपर उसने नम्रतापूर्वक कहा—'मेहताजी! आपको जितने घीकी आवश्यकता हो, आप मेरे यहाँसे ले जाइये। परंतु पहले मुझे दो-चार भगवद्भजन सुना दीजिये।

चातकको स्वातिके जलकी प्राप्ति होनेपर, निर्धन मनुष्यको अकस्मात् अतुल धन मिल जानेपर जितनी प्रसन्नता होती है, उतना ही नहीं; प्रत्युत उससे भी कई गुना अधिक आनन्द भक्तराजको हुआ। उन्होंने सोचा, जातिभोजन तो सायंकाल होगा; ऐसा भजन करनेका सुअवसर फिर कब मिलेगा? बस, उस व्यापारीकी दूकानपर आसन जमाकर बैठ गये और अत्यन्त प्रेमके साथ भगवत्संकीर्तन करने लगे। उनकी सुमधुर, प्रेमपगी वाणी सुनकर कुछ ही क्षणोंमें वहाँ सैकड़ों आदमी एकत्र हो गये और नरसिंहजी जाति-भोजन तथा पितृश्राद्धको भूलकर प्रभुके भजनमें लीन हो गये!

भक्तराज तो सब कुछ भूलकर भगवत्प्रेममें डूब गये; परंतु जिन भगवान्‌के ऊपर उनका इतना गाढ़ा प्रेम था और जिन्होंने उनका योगक्षेम वहन करनेका बोझ अपने सिर लिया था, वह कैसे निश्चिन्त हो सकते थे? भगवान्‌ने अपने धाममें विचार किया कि नरसिंह तो भजनमें संलग्न हो गया है, उसे इस बातका लेशमात्र भी खयाल नहीं कि पितृश्राद्ध करना है और ब्राह्मणभोजनका प्रबन्ध करना है। यदि मैं चलकर उसका सारा कार्य स्वयं नहीं करूँगा तो आज भक्तकी मर्यादा नष्ट हो जायगी और मेरी भी भक्तवत्सलताका विरद बरबाद हो जायगा। उन्होंने तुरंत अक्रूरजीको बुलाकर आज्ञा दी कि आप व्यापारीका वेष धारणकर श्राद्ध तथा ब्राह्मणभोजनके लिये सारी आवश्यक वस्तुएँ मेहताजीके घरपर पहुँचा दीजिये, मैं भी स्वयं नरसिंहरामका रूप धारणकर वहाँ शीघ्र ही आ रहा हूँ।

नरसिंहरामको बाजार गये बहुत देर हो गयी थी। माणिकबाई सोचने लगी, क्या हुआ जो घी लेकर नहीं लौटे? क्या घी नहीं मिला? अगर नहीं मिला तो फिर श्राद्ध और ब्राह्मणभोजन कैसे होगा? क्या आज ब्राह्मण दरवाजेपरसे भूखे लौट जायँगे? ओह! कितना बड़ा पाप लगेगा! वह बड़े लापरवाह हैं; मालूम होता है किसी साधु-मण्डलीमें जाकर बैठ गये और काम-काज भूल ही गये; नहीं तो वापस तो आ ही गये होते। भगवन्! कैसे आज लाज रहेगी?

माणिकबाई इसी चिन्तामें बेचैन थी कि अकस्मात् भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार सेठ-वेषधारी अक्रूरजी सारा सामान छकड़ोंपर लादे लेकर आ पहुँचे। माणिकबाईकी चिन्ता एकाएक दूर हुई और वह बड़ी प्रसन्नताके साथ सारी सामग्री यथास्थान रखवाने लगी। थोड़े समयमें ही स्वयं भगवान् भी नरसिंहरामके रूपमें घी

लेकर आ पहुँचे। इस गुप्त रहस्यको कोई जान न सका। माणिकबाईने मेहतारूपधारी भगवान्‌से प्रश्न किया—'इतनी देर कहाँ लगा दी? मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गयी थी। इतना सब सामान कहाँसे प्राप्त हुआ?'

'सती! आज पिताजीके श्राद्धके उपलक्षमें सारी नागर-जातिको भोज देनेकी परमात्माकी इच्छा हो गयी; यह सब सामान उन्हींका दिया हुआ है।' भगवान्‌ने हर्षके साथ उत्तर दिया।

'नाथ! मैं रसोई-पानीका सारा प्रबन्ध करती हूँ; आप शीघ्र पुरोहितजीको बुला लाइये। मध्याह्नका समय हो गया है, अब श्राद्धका कार्य करना चाहिये।' माणिकबाईने कहा।

भक्त-वेषमें भगवान् पुरोहितजीके घर पहुँचे। उन्होंने विनीत स्वरमें कहा—'पुरोहितजी! समय हो गया है; कृपया मेरे घर पधारकर एकोद्दिष्ट श्राद्ध करा दीजिये।'

इस नश्वर भौतिक जगत्‌में धनवान्‌का ही अधिक मान होता है, सर्वत्र धनवान् ही पूज्य माना जाता है। निर्धन मनुष्य यदि अत्यन्त गुणी भी हो तो उसकी ओर कोई ध्यान भी नहीं देता। यही कारण है कि किसी नीतिकारने यहाँतक कह डाला है कि—

ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा वयोवृद्धास्तथापरे।
ते सर्वे धनवृद्धस्य द्वारि तिष्ठन्ति किंकराः॥

अर्थात् 'ज्ञानी, तपस्वी तथा वयोवृद्ध मनुष्योंको भी धनवान् मनुष्यके द्वारपर किंकरवत् रहना पड़ता है।' हमारे भक्तराज भी लोकदृष्टिमें वास्तवमें निर्धन ही तो थे। फिर उनका कार्य करनेके लिये पुरोहितजी कैसे तैयार होते? उनकी स्थूल दृष्टिमें भी तो सच्चा यजमान वही था जो भरपूर दक्षिणा दे। अतएव उन्होंने स्वार्थमें अन्धे होकर कहा—'नरसिंहराम! तुम जानते

ही हो कि आज वंशीधर भाईका भी निमन्त्रण आया है। फिर उनको छोड़कर तुम्हारे घर कैसे चल सकता हूँ।'

'क्यों पुरोहितजी! क्या मैं आपका यजमान नहीं हूँ? आपकी दृष्टिमें तो धनवान् और निर्धन सभी यजमान एक समान होने चाहिये?' नरसिंहरूपधारी भगवान्ने कहा।

'सभी यजमान समान कैसे हो सकते हैं? तूने तो सारी जिन्दगीमें आज निमन्त्रण दिया है और वंशीधरका बराबर ही निमन्त्रण आया करता है। फिर आज भी तू भिक्षुक दक्षिणा ही कितनी देगा? बराबरी दिखाने चला है!' पुरोहितजीने तिरस्कारभरे स्वरमें कहा।

'अच्छा महाराज! तब आजसे इस्तीफा दीजिये कि नरसिंहरामका मैं आजसे कुलपुरोहित नहीं रहा। मैं कोई दूसरा ब्राह्मण खोज लूँगा।' भगवान्ने कहा।

पुरोहितजीने तावमें आकर इस्तीफा लिख दिया। पत्र लेकर भगवान् वहाँसे चले आये। रास्तेमें एक मूर्ख निर्धन ब्राह्मण दिखायी पड़े। भगवान्ने कहा, 'महाराज! आप मेरे घर एकोद्दिष्ट श्राद्ध करानेके लिये पधारेंगे?'

ब्राह्मणने नम्रतापूर्वक प्रार्थना की—'नरसिंहरामजी! मैं कुछ भी पढ़ा-लिखा नहीं हूँ; केवल खेती करके अपना और अपने परिवारका उदर-पोषण करता हूँ। अतः मैं आपके कार्यके योग्य नहीं; किसी विद्वान् ब्राह्मणको खोजिये।'

'महाराज! आप ही सच्चे ब्राह्मण हैं और सब कुछ जानते हैं। जो ब्राह्मण विद्वान् होनेपर अहंकारके मदमें चूर है, वह ब्राह्मणत्वसे कोसों दूर है। वैसे ब्राह्मणकी मुझे आवश्यकता नहीं। आप कृपाकर मेरे घर पधारिये; आपके द्वारा ही मेरा कार्य सम्पन्न हो जायगा।' कहकर भगवान् उस मूर्ख ब्राह्मणको घर ले आये।

भगवान्‌के आज्ञानुसार घरपर श्राद्धकी सब सामग्री तैयार थी। भगवान् श्राद्ध करने बैठ गये। भगवान्‌का स्पर्श पानेमात्रसे मूर्ख ब्राह्मण समस्त वेद-शास्त्रका प्रकाण्ड विद्वान् बन गया और उसने अत्यन्त विधिपूर्वक श्राद्धका काम पूरा कराया। जो भगवान् '**मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम्**' की शक्ति रखते हैं, उनके लिये इसमें आश्चर्य ही क्या था? श्राद्ध समाप्त हो जानेपर भगवान्‌ने ब्राह्मणको पचास स्वर्णमुद्राएँ दक्षिणामें दीं और बड़े आदरके साथ भोजन कराया। नागर-वेषधारी भगवान्‌के अनुचरोंने समस्त नागर-जातिको बुलाकर अत्यन्त प्रेम और आदरके साथ भोजन कराया। सब लोग अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। इस प्रकार सन्ध्यासमयतक भक्तराजका सारा कार्य समाप्त कर अपने अनुचरोंके साथ भगवान् अन्तर्हित हो गये।

सारा कार्य समाप्त हो जानेपर अन्तमें माणिकबाई प्रसाद पाने बैठीं। ठीक इसी समय भक्तराजने हाथमें घृतका पात्र लेकर घरमें प्रवेश किया। वह अत्यन्त देर हो जाने तथा श्राद्ध न करनेके कारण मन-ही-मन संकुचित हो रहे थे। उन्हें देखते ही आश्चर्यके साथ माणिकबाईने प्रश्न किया—'स्वामिन्! ब्राह्मणभोजन समाप्त करके आप यह क्या ला रहे हैं?'

'अरे तू क्या कहती है? ब्राह्मणभोजन और श्राद्ध हो गया? मैं तो प्रातःकाल ही जो घृत लेनेके लिये गया सो अभी आ रहा हूँ। रास्तेमें एक भक्त मिल गये, उन्हींके यहाँ थोड़ा भजन करके मैं अभी आ रहा हूँ। इसीसे मुझे देर भी हो गयी।' नरसिंहरामने विस्मयके साथ कहा।

'तो फिर विधिवत् श्राद्ध करके हजारों मनुष्योंको भोजन किसने कराया? मैंने तो स्पष्ट देखा कि आप ही सब कुछ कर

रहे हैं। आप मुझसे मजाक क्यों कर रहे हैं।' चकित होकर माणिकबाईने कहा।

'प्रिये! मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ; मैं तो अभी आ रहा हूँ। अवश्य ही यह सब मेरे प्रियतम श्रीकृष्णका कार्य है। मेरा स्वरूप बनाकर स्वयं मनमोहनने ही मेरे धर्मकी रक्षा की है। भगवान्‌की कितनी महती दया है।' इतना कहते-कहते दोनों पति-पत्नीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बरसने लगे। वे अत्यन्त प्रेममग्न होकर भगवद्भजन करने लगे।

भजनका प्रभाव

आज एकादशीका दिन था। भक्त दम्पतिका नियम था— एकादशीका व्रत रखना और दिनभर भगवद्भजनके अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य न करना। अतः आज नित्यकर्मसे निवृत्त होकर दोनों पति-पत्नी भजनमें संलग्न हो गये। अन्य दिन तो भोजनादिका कुछ झंझट रहता था जिससे भजनमें कुछ बाधा पड़ ही जाती थी। आज उससे भी छुट्टी थी। अतएव और दिनोंसे आज कहीं अधिक आनन्द था; निश्चिन्त रूपसे दोनोंका भजन चल रहा था।

आजकल धार्मिक कार्योंमें श्रद्धा न रखनेवाले बहुत-से नवशिक्षित युवक एकादशी आदि व्रतोंके दिन उपवास रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं समझते। उनकी दृष्टिमें यह सब बातें स्वास्थ्यके विरुद्ध हैं। परंतु वास्तवमें देखा जाय तो वे भ्रममें हैं। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने एकादशी आदि व्रतोंको धर्मके साथ जोड़कर हमारा बड़ा भारी उपकार किया है। यदि हम धार्मिक तत्त्वको छोड़ भी दें तो वैज्ञानिक दृष्टिसे भी इन सब व्रतोंका बड़ा महत्त्व है। यह सभी स्वीकार करेंगे कि दसों इन्द्रियों और मनका संयम करना मनुष्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

परंतु माणिकबाईका शरीर आज कुछ अस्वस्थ था। उसे साधारण ज्वर हो आया था। फिर भी वह शरीरका कुछ भी खयाल न कर पतिके साथ भजन करनेमें ही लीन थी। **'कोटिजन्मार्जिते पुण्ये कृष्णे भक्तिः प्रजायते'** इस शास्त्रवाक्यको लक्ष्यमें रखकर वह अपना मनुष्यजन्म सफल बना रही थी। दोनों पति-पत्नी भगवत्प्रेममें इतने मग्न हो रहे थे मानो वे

इस मायिक जगत्से निकलकर भजनानन्दके अनुपम जगत्में विहार कर रहे हों।

भजन करते-करते सायंकाल हो गया। भक्तराज भजन बन्द करके स्नान करनेके लिये दामोदरकुण्ड* पर आये। स्नान समाप्तकर उन्होंने समीपवर्ती उद्यानसे फूल और तुलसी-दल लिया और उसके बाद वह घरकी ओर चल पड़े। उनके मुखसे 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे' की ध्वनि अबाध गतिसे हो रही थी।

रास्तेमें जाते-जाते अकस्मात् 'भक्तराज! जय श्रीकृष्ण' की आवाज उनके कानोंमें पड़ी। जरा सचेत होकर जब उन्होंने उधर दृष्टि घुमायी तो कुछ दूरीपर एक अन्त्यज (ढेढ़)-को हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए देखा। बहुत पहलेसे उस अन्त्यजकी भक्तराजपर अत्यन्त श्रद्धा थी। वह नित्य स्नान करके लौटते समय भक्तराजके दर्शन किया करता था। उसकी दृष्टिमें भक्त और भगवान्में कोई भेद नहीं था।

नरसिंहराम तो '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' का भाव रखनेवाले थे। उन्होंने उत्तर दिया—'जय श्रीकृष्ण भगत!'

'भक्तराज! मैं आपसे कुछ विनती करना चाहता हूँ।' अन्त्यजने नम्रतापूर्वक निवेदन किया।

'भाई! ऐसा कौन-सा कार्य आ पड़ा जिसके लिये मुझसे विनती करनेकी आवश्यकता पड़ी। मैं तो एक श्रीकृष्णनामके सिवा और कुछ नहीं जानता, तथापि मेरे योग्य कोई कार्य

---

* नरसिंह मेहता नित्य इसी कुण्डमें स्नान करने जाया करते थे। आज भी वह कुण्ड जूनागढ़से दो मील दूर गिरनारपर्वतकी तराईमें वर्तमान है। बहुत दूर-दूरके यात्री इस दामोदरकुण्डमें स्नान करनेके लिये आते हैं।

हो तो संकोच छोड़कर बताओ।' नरसिंहरामने अभिमानरहित होकर कहा।

'मेहताजी! मैं किसी सांसारिक कार्यके लिये विनती नहीं करता। आज एकादशीका उपवास मैंने भी किया है। अतएव रात्रिमें जागरण करनेके निमित्त भजन कराना चाहता हूँ। क्या मेरी विनती स्वीकारकर आप मेरे आँगनको आज पवित्र कर सकेंगे।' अन्त्यजने श्रद्धाके साथ अपनी इच्छा प्रकट की।

'भैया! इस कामके लिये विनती करनेका क्या प्रयोजन? भगवान्‌का भजन करना तो मेरा काम ही है। फिर स्वयं भगवान्‌ने कहा है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

जिस स्थानपर भगवान्‌का भजन होता है, वह साक्षात् वैकुण्ठलोक ही है। जो मनुष्य भगवान्‌का नाम लेता है वह हीन-जातिका होनेपर भी देवसमान है और जो मनुष्य भगवद्भजनके प्रभावको जानकर भी भगवान्‌से विमुख रहता है, वह उच्च कुलमें उत्पन्न होनेपर भी आत्महत्याके महान् पापका भागी बनता है। भगवान्‌का भजन करने तथा श्रवण करनेका ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालपर्यन्त सबको समान अधिकार है। श्रीमद्भगवद्गीतामें तो ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समदृष्टि रखनेवाले ही सच्चे ज्ञानी बतलाये गये हैं। सामाजिक आचार-विचारमें भेद है और वह रहना भी चाहिये, इसीसे भगवान्‌ने समान दृष्टि रखनेकी बात कही है। सब बातोंमें समान बर्तावकी नहीं। परन्तु भजनका तो सभीको अधिकार है। अतः तुम अपने आँगनमें

तुलसी-चबूतरेके समीप गोबरसे जमीनको लीप-पोतकर भजनकी तैयारी करो। मैं तुम्हारे इच्छानुसार आज रातको तुम्हारे आँगनमें ही भगवान्‌का भजन करूँगा।'

इस प्रकार अन्त्यज भक्तको वचन दे नरसिंहराम अपने घर आये। अन्त्यज भक्तने भी आज्ञानुसार सब तैयारी की तथा अन्य साधु-सन्तों और भक्तोंको भी आमन्त्रित किया। नरसिंहराम अपने घरपर भगवान्‌का पूजन करके, करताल-मृदंग आदि भजनकी सामग्री लेकर अन्त्यज भक्तके आँगनमें उपस्थित हुए और भजन करने लगे। वह बाहरी संसारको पूर्णरूपसे भूलकर भगवत्प्रेममें मस्त हो गये थे। उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुकी धारा निरन्तर बह रही थी, वह अधिकाधिक उत्साहके साथ कीर्तन करते जाते थे। उनके आस-पास बैठे हुए श्रोता मन्त्रमुग्ध सर्पकी भाँति एकाग्र होकर भजनानन्द लूट रहे थे। उस समय वहाँपर मानो शान्ति, पवित्रता और आनन्दका ही साम्राज्य फैल रहा था। इस प्रकार रातभर भक्तराज भजन करते रहे।

उधर घरमें माणिकबाईके ज्वरने धीरे-धीरे भीषण रूप धारण कर लिया। उस समय उनकी परिचर्या करनेवाला घरमें कोई नहीं था। वह भी निरन्तर भगवन्नामकी ही रट लगाये हुए थी, यहाँतक कि बेहोशीकी हालतमें भी उसकी जिह्वा भगवान्‌को ही पुकार रही थी, मानो उसने संसारसे सारा सम्बन्ध तोड़कर समाधिस्थ अवस्थामें केवल भगवान्‌से ही सम्बन्ध जोड़ लिया था। प्रात:काल भजन समाप्त कर जब नरसिंहराम घर आये तो देखा कि पत्नी मरणासन्न अवस्थामें है, केवल अन्तिम साँसें गिन रही है। नरसिंहजी पत्नीकी यह हालत देखकर उसकी सेवामें

लग गये और भगवन्नाम सुनाते हुए उसकी शुश्रूषा करने लगे; परंतु भगवान्‌का विधान कुछ और था। पतिके आनेपर उसने एक बार आँखें खोलकर उनके दर्शन किये और अन्तिम बार भगवान्‌के नामका जोरसे उच्चारण करके इस मर्त्यलोकसे सदाके लिये नाता तोड़ लिया। उस समयका दृश्य वज्रहृदय मनुष्यको भी पिघलानेकी शक्ति रखता था। फिर इकलौते नव-विवाहित युवक पुत्रकी मृत्यु तथा प्रौढ़ अवस्थामें सहधर्मिणीका देहान्त—दोनों विपत्तियोंका एक साथ आना संसारमें दुःखकी परमावधि ही कही जाती है। परन्तु फिर भी वीतराग भक्तप्रवर नरसिंह मेहता एकदम स्थिर और शान्त थे। वह वास्तवमें इस जन्म-मरणमय संसारमें रहते ही कहाँ थे, जो यहाँके दुःख-शोक उन्हें स्पर्श करते? वह तो सदा किसी दूसरे ही दिव्यलोकमें निवास करते थे, जहाँ निरन्तर एकरस आनन्द प्रवाहित होता रहता है।

पत्नीका वियोग देखकर भक्तराजने विचार किया कि इस संसारमें जिस वस्तुके साथ रहनेके कारण मैं संसारी कहलाता था, आज उस वस्तु—स्त्रीको भी परमात्माने मुझसे अलग कर दिया; भगवान्‌ने यह अनुग्रह ही किया। भजन करनेमें सहायता देनेवाली संगिनीका वियोग हो गया, परंतु सम्भव है इससे भजन और भी बढ़े। फिर मनुष्यको उचित है कि गयी बातका शोक न करे, भगवान्‌की इच्छासे जो कार्य होता है, वह न्यायपूर्ण और मंगलमय ही होता है। दुःख आ पड़नेपर शोक करनेसे मनुष्यको मिल भी क्या सकता है? गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी यह आज्ञा दी है कि—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥

(१२। १७)

अर्थात् 'जो कभी हर्षित नहीं होता, द्वेष नहीं करता, शोक नहीं करता, कामना नहीं करता तथा जो शुभाशुभ कर्मोंके फलका त्यागी है, वह भक्तिमान् पुरुष मुझे प्रिय है।' अतः इस संसारका क्षणिक सुख आनेपर, हर्ष और दुःख आनेपर शोक करना भगवदाज्ञाका उल्लंघन करना है। इस प्रकार विचारकर उन्होंने शान्तचित्त होकर पत्नीका विधिपूर्वक अग्निसंस्कार किया तथा शेष अस्थियोंको गंगाजीमें बहाकर घर आये।

× × × ×

इधर अन्त्यजके घर कीर्तन करनेका समाचार नागर-जातिमें फैल गया। दुर्जन मनुष्य परच्छिद्रान्वेषणमें तो चतुर होते ही हैं, येन-केन-प्रकारेण अन्य मनुष्योंके साथ द्वेष करनेमें ही वे अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझते हैं। इस तरहके नागरोंको नरसिंहरामकी निन्दा करनेका एक बहाना मिल गया। नागरोंके चौरेपर नरसिंहरामकी चर्चा जोरोंसे शुरू हो गयी।

'चाचाजी! उस भगतने तो अब जात-पातकी मर्यादाको भी रसातल पहुँचा दिया। वह अब हदसे बाहर जाने लगा है। हमारा दुर्भाग्य है जो हमारी जातिमें ऐसा बगुला भगत पैदा हुआ।' एक नागर युवकने श्रीगणेश किया।

'आखिर बात क्या है? स्पष्ट क्यों नहीं कहते। क्या तुम उस जादूगरसे डरते हो!' सारंगधर मेहताने गम्भीरतापूर्वक कहा।

'क्या आपने नहीं सुना। यह तो सब लोग जानते हैं कि कल वह भजनका बहाना करके रातभर एक ढेढ़के घर निस्संकोच पड़ा रहा। अब तो उसे कोई कुछ कहनेवाला भी नहीं है। यदि वह यों ही करता रहा तो बस, समस्त नागर-जातिका सत्यानाश हो जायगा।' बीचमें ही प्रसन्नरायने तिलको ताड़ बनाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

चौरेपर उपस्थित सभी नागरोंमें कोलाहल मच गया। सब लोग इस घटनापर अपनी-अपनी राय देने लगे। एक वृद्ध नागरने कहा—'बस, अब कलियुगका पूरा प्रभाव फैल गया; उच्च कुलोत्पन्न ब्राह्मण अन्त्यजके घर जाकर रातभर बैठा रहा! पृथ्वी माता कैसे ऐसे पापका बोझ सहन करेंगी। मेरे-जैसे वृद्धोंका तो अब संसारमें जीना ही निरर्थक है। एक दूसरे वृद्धने कहा—'यदि ऐसा अधर्म होने लगेगा तो थोड़े समयमें ही प्रलय हो जायगा।' एक तीसरे नागरने अपना फैसला सुनाया, 'तो फिर ऐसे पतितोंका पाप हम कबतक देखते रहेंगे? आजसे ही उसे जातिसे बाहर कर देना चाहिये, आप ही उसका मिजाज ठिकाने आ जायगा।'

कुछ लोगोंने कहा कि 'वह तो भजन करने गया था, वहाँ कोई खान-पानकी बात तो थी नहीं, फिर क्यों ऐसा किया जाता है। परन्तु नगाड़ेके सामने तूतीकी आवाज कौन सुनता।

उपस्थित सभी जाति-नेता इस बातपर सहमत हो गये। सबने यह निश्चय किया कि आजसे नरसिंह मेहता जातिच्युत समझा जाय और उसके साथ खान-पान आदि व्यवहार बन्द कर दिया जाय। इस प्रकार भक्तराजको जातिसे बहिष्कृत करके जाति-नेताओंने अपनी दृष्टिसे अपनी जातिकी पवित्रताकी रक्षा की और इससे उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ।

दूसरे दिन कृष्णराय नामक एक नागरकी माताके एकादशाह श्राद्धके निमित्त जाति-भोज था। जातिभरके आबाल-वृद्ध सब लोग निमन्त्रित किये गये थे; केवल बहिष्कृत होनेके कारण नरसिंह मेहताको निमन्त्रण नहीं दिया गया था। सन्ध्यासमय कृष्णरायके घर सभी नागर एकत्र हुए और भोजनके लिये पंक्ति लगाकर बैठे।

भक्तराज नरसिंहरामको सम्भवत: अभी इस बातका पता भी नहीं था कि मैं जातिच्युत किया गया हूँ। उन्हें कहाँ फुरसत थी जो इस ओर वह ध्यान देते? सच्चे भगवद्भक्त तो एक क्षणके लिये भी अपने प्रभुको भुलाकर दूसरी ओर ध्यान देना मरणसे अधिक दु:खदायी समझते हैं। परंतु अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार भगवान्‌को तो चिन्ता रहती ही है। भगवान् अपना अपमान तो सह लेते हैं, परंतु भक्तोंका अपमान कदापि नहीं सह सकते। उन्होंने नागरोंको भी भक्तराजके अपमानका बदला देना उचित समझा। उन्होंने तुरन्त अपनी विचित्र माया फैलायी। जब नागरोंकी पंक्तिमें भोजन परोस दिया गया और उन्होंने भोजन करना शुरू किया तब प्रत्येक नागरने अपने बगलमें एक अन्त्यजको बैठे देखा। इस दृश्यको देखकर सभी नागर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये और भोजन छोड़कर भागने लगे।

जातिके अगुआ सारंगधरने चिन्तित होकर कहा— 'अनन्तराय! गजब हो गया। इन अन्त्यजोंके साथ भोजन करके तो आज हम सभी पापके भागी हो गये! अब क्या किया जाय। हमलोगोंको तो गंगास्नान करके प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। इस पापसे छूटनेका क्या कोई और उपाय है?'

'सारंगधरजी! भक्त नरसिंहरामको जातिच्युत करनेका ही

यह परिणाम मालूम होता है। अब तो अपने कियेका हमें फल भोगना ही पड़ेगा।' अनन्तरायने कहा।

'तो क्या यह सब उसी जादूगरके हथकण्डे हैं?' सारंगधरने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

'नहीं भाई! ऐसी बात नहीं है। नरसिंहराम भगवान् श्रीकृष्णके एकनिष्ठ सच्चे भक्त हैं। प्रायश्चित्तद्वारा हम अन्य पापोंसे तो कदाचित् छूट सकते हैं; परंतु एक सच्चे भक्तके प्रति किये गये अपराधरूप पापसे गंगास्नान करने या अन्य प्रायश्चित्त करनेसे कदापि हमें मुक्ति नहीं मिल सकती। यदि मेरी बातपर किंचित् भी विश्वास हो तो शीघ्र उन वीतराग महात्माके चरणोंमें प्रणाम करके उनसे क्षमायाचना करो तथा उन्हें जातिमें मिलाकर अपने साथ भोजन कराओ। हमारे अपराधका यही प्रायश्चित्त है।' अनन्तरायने स्पष्टरूपमें सुना दिया।

अनन्तराय नरसिंहरामके मामा लगते थे। विद्वत्ता, वाक्पटुता तथा नम्रता आदि सद्गुणोंके कारण समग्र जातिमें उनका बड़ा मान था, अतः जातिके सब लोगोंको उनके वचनोंपर विश्वास हो गया। जातिके दो-चार प्रतिष्ठित पुरुष उसी समय नरसिंहरामके घर गये। उस समय नरसिंहराम भगवान्को नैवेद्य समर्पित कर रहे थे। आगन्तुक जाति-नेताओंने उन्हें वन्दना करके क्षमायाचना की तथा जातिभोजमें सम्मिलित होनेकी प्रार्थना की।

'भाइयो! आप इतनी विनय क्यों कर रहे हैं? ऐसी प्रार्थना तो भगवान्से ही करनी उचित है; मैं तो आपलोगोंका एक तुच्छ सेवक हूँ, मेरे अन्दर कोई विशेषता नहीं।' नरसिंह मेहताने नम्रतापूर्वक निवेदन किया।

वास्तवमें जो सच्चे भक्त होते हैं, वे भूल करके भी अभिमान नहीं करते। वे तो—

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥

(६।९)

अर्थात् 'जो पुरुष सबका हित करनेवाले सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी और बन्धुजनोंमें तथा धर्मात्माओंमें भी समान भाव रखनेवाला है, वह अतिश्रेष्ठ भक्त है'—गीताके इस श्लोकके अनुसार सबमें समान भाव रखते हैं। नरसिंहराम भी सच्चे भगवद्भक्त थे। उन्होंने तुरन्त जातिभोजमें सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। जब नरसिंहराम भी जाकर पंक्तिमें बैठ गये तब पहलेका दृश्य दूर हो गया और सब लोगोंने प्रसन्नतापूर्वक भोजन किया।

इस प्रकार भगवद्भजनके प्रभावसे नरसिंहराम जाति-बहिष्कारकी विपत्तिसे बच गये और उनके विरोधियोंको नीचा देखना पड़ा।

शामलशाहपर हुण्डी

स्वार्थमय संसारमें धनवान्-धनहीन, दाता-कृपण, विद्वान्-मूर्ख, कुलीन-अकुलीन एवं सज्जन-दुर्जनका मानो परम्परागत वैर चला आ रहा है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी दैवी तथा आसुरी-सम्पत्तिमें परस्पर विरोध बतलाया गया है। परंतु यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उस वैरमें यह बात भी उसी तरह निश्चित है कि अन्तमें दैवी पक्षकी विजय और आसुरी पक्षका पराजय होता है।

दैवी सम्पत्तिसम्पन्न नरसिंहराम भी आरम्भसे ही यह युद्ध लड़ते आ रहे थे और उसमें लौकिक और पारमार्थिक दोनों दृष्टियोंसे उन्हींकी विजय भी होती आ रही थी। इन्हें पुनः एक संकटका सामना करना पड़ा। उनकी पत्नीको मरे प्रायः नौ दिन बीत चुके थे। अब उनका श्राद्ध करने और उस अवसरपर ब्राह्मणों तथा जाति-भाइयोंको भोजन करानेकी आवश्यकता आ पड़ी थी। परंतु वह भगवान्के भरोसे निश्चिन्त थे।

नागर-जातिके प्रमुख व्यक्ति उनके पास आते थे और सारी जातिको एकादशाह और द्वादशाह दोनों दिन भोजन करानेपर जोर दे रहे थे। परंतु नरसिंहराम 'परमात्माकी जैसी इच्छा' कहकर बात टाल दिया करते थे। एक दिन प्रातःकाल ही सारंगधर नामक एक प्रमुख नागर उनके यहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने आते ही 'जय श्रीकृष्ण' कहकर भक्तराजका अभिवादन किया। भक्तराजने भी 'जय श्रीकृष्ण' कहकर अभिवादनका उत्तर देते हुए कहा—'पधारिये सारंगधरजी! आज तो आपने मेरी पर्णकुटी पावन की।'

इस प्रकार शिष्टाचारकी दो-एक बातें होनेके बाद सारंगधर बोले—'नरसिंहराम! आज मैं तुम्हें एक सलाह देनेके लिये आया हूँ। तुम उच्चकुलके पुरुष हो, अपने कुलकी प्रथाके अनुसार तुम्हें माणिकबाईके निमित्त एकादशाह और द्वादशाह दो दिन जातिभोज देना चाहिये। इससे कम करनेसे तुम्हारी मर्यादामें बट्टा लगेगा।'

'सारंगधरजी! आप ठीक कहते हैं; परन्तु इसमें कुलकी प्रथाका कोई खयाल नहीं। यह बात अपनी वर्तमान अवस्थापर निर्भर करती है। शक्तिके बाहर कोई काम करना ठीक नहीं। मैं तो बस दो-चार साधु-सन्तोंको……।'

सारंगधरने बीचमें ही बात काटते हुए कहा—'हैं! पागल हो गये हो क्या नरसिंहराम? दो-चार भगत-भिखारियोंको भोजन करानेसे थोड़े ही तुम्हारी पत्नीका कल्याण होगा? जाति-गंगाको तृप्त किये बिना उस बिचारीको कैसे सद्‌गति प्राप्त होगी? वह बिचारी क्या कुछ साथ लेकर गयी है? अब यही तो उसका अन्तिम नाता है। उसके नामपर तुम इतना भी नहीं कर सकते? बार-बार थोड़े ही करना है।'

'भाई! आपका कहना तो यथार्थ है। मरनेवाला व्यक्ति अपने साथ कुछ ले नहीं जाता और उसके नामपर यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराना उचित भी है। परन्तु यह कोई जरूरी नहीं कि अपनी शक्तिके बाहर कई दिनोंतक अधिकाधिक आदमियोंको भोजन कराया जायगा। श्रद्धापूर्वक जो कुछ किया जाता है, वही श्राद्ध कहलाता है। उस आत्माके नामपर श्रद्धापूर्वक जितने ही लोगोंको भोजन कराया जायगा, उतनेसे ही उसे शान्ति मिलेगी और उसकी सद्‌गति होगी। जाति-व्यवहार भी ठीक ही है; परन्तु साधुओं और अनाथोंकी

सेवा उससे कहीं अधिक महत्त्व रखती है। जातिभोज तो अधिकतर व्यवहारका विषय है।' नरसिंहरामने उत्तर दिया।

सारंगधर उपदेश लेने तो आये नहीं थे, वह तो समस्त जातिकी ओरसे पंच बनकर आये थे और उन्हें अपना काम बनाना था। अत: वह शीघ्र ही नरसिंहरामको छोड़नेवाले नहीं थे।

'उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।'

इस न्यायके अनुसार नरसिंहरामके उपदेशोंका उनपर उलटा ही असर हुआ और उन्होंने भीषण रूप धारण कर लिया। उन्होंने कहा—'नरसिंहराम! ऐसा ज्ञान किसी लंगोटीधारी साधुको ही देना। आजतक तुमने जातिमें रहकर सबके घर भोजन किया है और आज जब अपने खिलानेका अवसर आ पड़ा है तब छटकना चाहते हो। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मैं कहे देता हूँ, कलसे दो दिनतक तुमको जाति-भोजन कराना ही पड़ेगा; इसके लिये चाहे इस घरको बेच दो या अपनी स्त्रीके गहनोंको।'

सारंगधरकी बात सुनकर सरलस्वभाव नरसिंहरामने भगवन्नामका जप करते-करते मस्तक हिलाकर हामी भर दी। बस, फिर क्या था? सारंगधरका विजयडंका बज गया। वह अपनी विजयपर फूला हुआ अपने घर वापस लौट गया।

सारंगधरके चले जानेपर भक्तराज सोचने लगे—'मैंने जाति-भोजन करानेके लिये हाँ तो कह दिया; किन्तु अब इसको पूर्ण करना तो श्यामसुन्दरके ही अधीन है। जैसी उनकी इच्छा होगी करेंगे। व्यर्थ चिन्ता करके समयका दुरुपयोग करनेमें क्या लाभ? यह सोचकर वह भगवान्‌के ध्यानमें मग्न हो गये।

इधर चौरेपर बैठकर नागर-जातिके कुछ प्रमुख लोग आपसमें गपशप लड़ा रहे थे। इसी समय चार यात्री वहाँ आये और उन्होंने

नम्रतापूर्वक पूछा—'भाइयो! इस नगरमें ऐसा धनवान् कौन व्यापारी है, जो हमारे सात सौ रुपये लेकर द्वारिकाकी एक हुण्डी लिख दे?'

चौरेपर उपस्थित नागरोंमें नरसिंहरामकी चर्चा चल रही थी। यात्रियोंकी बात सुनकर एक ईर्ष्यालु नागरने तुरन्त उत्तर दिया—'आपलोग नरसिंह मेहताके घर चले जाइये। द्वारिकामें उनकी बहुत बड़ी पेढ़ी (दूकान) है। हुण्डी वहीं स्वीकृत हो जायगी। आपलोगोंको अन्य स्थानमें ऐसी सुविधा नहीं मिलेगी।'

'दो-एक और नागरोंने भी व्यंगसे हाँ-में-हाँ मिला दी।' बेचारे यात्रियोंको विश्वास हो गया और वे पूछते-पूछते मेहताजीके घरपर आ पहुँचे। भक्तराज भगवद्भजनसे निवृत्त होकर भगवान्‌को नैवेद्य समर्पित कर रहे थे। यात्रियोंने मेहताजीको नमस्कार किया। भक्तराजने अभिवादनका उत्तर देनेके बाद उन्हें आसन, जल और भगवत्प्रसाद प्रदानकर उनका यथोचित सत्कार किया और फिर आगमनका कारण पूछा।

'नरसिंहरामजी! हमलोग परदेशी यात्री हैं। जूनागढ़से द्वारिकापुरीका मार्ग विकट होनेके कारण द्रव्य लेकर चलना हमें अनुचित और भयावह प्रतीत होता है। अतएव ये सात सौ रुपये लेकर यदि आप द्वारिकाकी हुण्डी लिख दें तो बड़ी कृपा होगी।' एकने नम्रतापूर्वक कहा।

'हरिजनो! मेरा घर आप लोगोंको किसने बताया?' भक्तराजने हँसते हुए पूछा।

'भक्तराज! यहीं पासमें एक चौरेपर कुछ भले आदमी बैठे थे, उन्हीं लोगोंने आपका परिचय देकर विश्वास दिलाया है कि यहाँ द्वारिकाकी हुण्डी मिल जायगी।' एक यात्रीने उत्तर दिया।

यह सुनकर भक्तराजको अपने जाति-भाइयोंकी करतूतपर हँसी आ गयी। सज्जन पुरुष दुर्जनोंके अनुचित कार्योंसे भी घबड़ाते नहीं, बल्कि उन्हें भी उपयोगी समझकर सन्तोष मानते हैं, महासागरके खारे जलको अमृत बनाकर मेघमण्डल जगत्को जीवन प्रदान करता है। भक्तराजने सोचा कि इस अनायास उपस्थित संयोगमें अवश्य ही ईश्वरीय संकेत होना चाहिये, अन्यथा यह असम्भव कार्य सम्भव कैसे होता? कलसे ही तो पत्नीके एकादशाह-द्वादशाहके निमित्त जाति-भोजन कराना है। इसी कार्यके लिये इस रूपमें भगवान्ने सहायता भेजी होगी, नहीं तो इन यात्रियोंका और मेरा यह संयोग ही कैसे बनता। समय विचारकर कार्य करनेवाला ही मनुष्य सावधान कहा जाता है। अतः हुण्डी लिखनेमें विलम्ब करना उचित नहीं। परमात्माकी इच्छाके अनुसार यह सुयोग उपस्थित हुआ है और मेरी हुण्डी वह द्वारिकावासी भगवान् अवश्य ही स्वीकार कर लेंगे।

ऐसा दृढ़ निश्चय करके भक्तराजने सात सौ रुपये ले लिये और हुण्डी लिखकर उन्हें दे दी।

हुण्डी

सिद्धिश्री परमशोभाधाम श्रीद्वारिकानिवासी प्रियतम प्राणाधार सेठ श्रीशामलशाह वसुदेवकी सेवामें सप्रेम प्रणाम। आगे निवेदन है कि मैंने यहाँपर इन चार यात्रियोंसे नगद सात सौ रुपये लेकर आपपर यह हुण्डी लिख दी है। अतः इस हुण्डी-पत्रको देखते ही इन लोगोंको पूरे सात सौ रुपये नगद दे देनेकी कृपा करें।

लि० जूनागढ़से आपका नम्र सेवक—

नरसिंहराम

हुण्डी लेकर चारों यात्री वहाँसे रवाना हो गये। भगवान्को नैवेद्य समर्पित कर भक्तराज भगवान्से विनय करने लगे, 'हे भक्तवत्सल भगवन्! आपके ही विश्वासपर मैंने हुण्डी लिखी है। क्या आप उसे स्वीकार करके मेरी प्रतिष्ठाकी रक्षा नहीं करेंगे? नाथ! मैं तो समझता हूँ कि उससे मेरी प्रतिष्ठामें तो किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचेगी; बल्कि जगत्में आपकी ही हँसी होगी। दयालु दामोदर! क्या आपको खबर नहीं है कि कलसे दो दिनपर्यन्त सारी जातिको भोजन कराना पड़ेगा? इसी कारण मैंने यह धृष्टता की है और वह भी केवल सात सौ रुपयेके लिये। जगन्नाथ! आपके भण्डारमें सात सौ रुपयोंकी क्या बात है? आपने मरणोन्मुख गजेन्द्रको प्राणदान दिया था, सती पांचालीको भरी सभामें अक्षय चीर प्रदान करके उसकी लाज बचा ली थी। इतना ही नहीं, प्रत्युत मेरे ही पुत्रके विवाहमें, पिताजीके श्राद्धमें तथा अन्य व्यावहारिक प्रसंगोंपर आपने मेरी सहायता की है। क्या इन सात सौ रुपयोंका प्रबन्ध आप नहीं कर सकेंगे?'

प्रार्थना करते समय भक्तराजके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चल रहा था। इतना कहकर वह भगवान्की प्रतिमाके चरणोंमें लोट गये। वह कबतक इस स्थितिमें पड़े रहे, इसकी उन्हें स्वयं भी खबर न रही।

दूसरे दिन प्रात:कालसे ही जातिभोजकी तैयारी होने लगी। आवश्यक सब सामग्री बाजारसे आ गयी और बड़ी धूमधामके साथ दो दिनोंतक लगातार जाति-भोजन होता रहा। जातिभरके सब लोग बड़े सन्तुष्ट हुए।

× × × ×

चारों तीर्थयात्री यथासमय द्वारिका पहुँच गये। उन्होंने भगवान्

द्वारिकाधीशके दर्शन करनेके पश्चात् हुण्डीका रुपया लेनेके लिये सेठ शामलशाह वसुदेवकी खोज करना शुरू कर दिया। बाजारमें पूछनेपर किसीने उस व्यापारीका पता नहीं बतलाया। तीर्थयात्री बड़े चक्करमें पड़े। उनके मनमें शंका हुई, उन्होंने सोचा, कहीं उस भगतने हमलोगोंके साथ ठगी तो नहीं की। यदि ऐसा हुआ तो?…जूनागढ़में तो उसका घर है ही; वहाँसे कहाँ जायगा? वहाँ तो उसे रुपया देना ही पड़ेगा। परन्तु वह देखनेमें तो सत्पुरुष मालूम होता था—वह धोखा कैसे दे सकता है? लेकिन यहाँ तो शामलशाह सेठका कोई नाम-निशान भी नहीं है।

इस तरह विचार करते हुए उन्होंने सेठकी खोज करनेमें सारा दिन व्यतीत कर दिया, परन्तु किसी मनुष्यने उस सेठका नाम-निशानतक नहीं बतलाया। यात्री बड़े निराश हुए। उन्होंने सोचा, अब यहाँ सेठका पता मिलना कठिन है। जूनागढ़ चलकर रुपया वसूल करना चाहिये।

दूसरे दिन अमावस्याका पर्व होनेके कारण द्वारिकामें यात्रियोंकी बड़ी भीड़ हो रही थी। पण्डे लोग अपने यजमानोंके पाप-निवारणार्थ उन्हें विधिपूर्वक गोमतीमें स्नान करा रहे थे। भगवान्‌के दर्शन-पूजनके लिये लोग मन्दिरमें टूटे पड़ते थे। सर्वत्र 'गोमती मैयाकी जय' और 'भगवान् द्वारिकाधीशकी जय' की ध्वनिसे आकाश गूँज रहा था। इसी समय भक्तवत्सल भगवान् भूधर भक्तका कार्य करनेके लिये सेठके रूपमें प्रकट हो गये। उनके साथ मुनीमरूपमें अक्रूरजी अपने साथ बही-खाता और कलम-दावात लिये हुए थे। उन्होंने मन्दिरके पास ही एक छोटे-से चबूतरेपर अपना आसन जमा दिया।

इधर चारों यात्री गोमती-स्नान करके भगवान्‌के मन्दिरमें आये। वे भगवान्‌के दर्शनकर मन्दिरसे निकले और जूनागढ़

चलनेका विचार करने लगे। मन्दिरसे चलते ही रास्तेमें उनकी दृष्टि इस नयी गद्दीपर पड़ी। उन्होंने सोचा, चलते-चलते जरा यहाँ भी पूछ लें। उनमेंसे एकने प्रश्न किया—'सेठजी! आपका शुभ नाम क्या है?'

'मेरा नाम है शामलशाह वसुदेव।' सेठस्वरूप भगवान्‌ने उत्तर दिया। यह सुनते ही यात्रियोंके सूखे हृदयपर आशाकी अमृतवर्षा हो गयी। अनायास सेठजीके मिल जानेसे उन्हें अपार आनन्द हुआ। उन्होंने तुरन्त सेठजीके हाथमें हुण्डी दे दी। सेठजीने हुण्डी देखकर उसे मुनीमके हाथमें दे दी और सात सौ रुपये चुका देनेकी आज्ञा भी दे दी। मुनीम अक्रूरजीने पूरे सात सौ रुपये गिनकर यात्रियोंके सम्मुख रख दिये।

यात्रियोंने रुपये गिनकर ले लिये और हुण्डीपर भरपाई कर दी। रुपये प्राप्त कर यात्रियोंने नरसिंहरामकी बड़ी प्रशंसा की और उनका सारा हाल सेठरूपधारी भगवान्‌को सुनाया। भगवान्‌ने भी भक्तकी प्रशंसा करते हुए कहा—'नरसिंहरामजी मेरे परमस्नेही हैं, मैं तो उनका एक आज्ञाकारी हूँ।'

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने भक्तवर नरसिंहरामकी हुण्डी स्वीकार कर भक्तकी प्रतिष्ठाकी रक्षा की और अपनी भक्तवत्सलताके यशको अक्षुण्ण रखा।

कुँवरबाईका संसार-चित्र

भारतीय जीवनकी एक विशेष बात है संयुक्त परिवारकी प्रथा। इस प्रथाने किसी समय हमारे गार्हस्थ्यजीवनको महान् उज्ज्वल और सुख-शान्तिमय बनानेमें बड़ी सहायता की थी और आज भी अनेक स्थलोंमें इसके गुण देखे जाते हैं। परंतु हमारी अज्ञानतावश इस सुन्दर प्रथाका भी एक दुष्परिणाम हमारे घरोंमें देखा जाता है और वह है गृहकलह। आज अधिकांश परिवार इस गृहकलहके शिकार हो रहे हैं। इसके कारण हजारों कोमल, अविकसित कलियाँ, अनेक कुलललनाएँ अकाल ही कालके गालमें समा जाती हैं और कितने ही सम्पन्न परिवार सदाके लिये दुःख-सागरमें डूब जाते हैं। यद्यपि यह कलह अत्यन्त साधारण-सी बातोंपर ही होता है, परन्तु यह अहर्निश सारे परिवारको आगकी तरह तपाता रहता है और किसी भी गृहपतिके लिये उसे बुझाना असम्भव हो जाता है। यहाँतक कि जो न्यायाधीश कचहरीमें बैठकर दुनियाके बड़े-बड़े और अत्यन्त जटिल मामलोंको तै किया करते हैं, वे भी अपने घरके मुकदमेका फैसला करनेमें असमर्थ-से हो जाते हैं। जो उपाधिप्राप्त डॉक्टर भीषण-से-भीषण, प्राणघातक रोगीकी चिकित्सा बड़ी सफलताके साथ किया करते हैं, वे भी इस गृहरोगको दूर करनेमें असफल रहते हैं। इस भारतीय गृहकलहकी भयंकरताका इससे अधिक और क्या वर्णन किया जाय? भगवान् इस महामारीसे भारतकी रक्षा करें।

भक्तराज नरसिंहरामकी प्रिय पुत्री कुँवरबाईका विवाह एक सुसम्पन्न शिक्षित परिवारमें हुआ था और जबसे ससुराल

गयी थी तबसे बराबर ही कुलोचित धर्मका पालन पूर्णरूपसे करनेकी चेष्टा करती थी; वह कभी किसी कामसे जी नहीं चुराती थी और सदा सबके साथ आदर और प्रेमका बर्ताव करती थी। फिर घरमें बेचारीका मान नहीं था। घरमें निरन्तर कलह रहता था। सास, जेठानी और ननद सभी उसपर वाग्बाण बरसाया करते थे। एक तो वह गरीब घरकी लड़की थी, दूसरे उसका पति वसन्तराय दुर्व्यसनी, लम्पट और क्रोधी था। इस कारण उसकी शिकायत भी कोई नहीं सुनता था। वह बेचारी भीतर-ही-भीतर अपनी व्यथासे नित्य घुला करती थी।

इसके अतिरिक्त एक तीसरा कारण और उपस्थित हो गया। इधर उसकी शादी हुए कई वर्ष बीत गये, परन्तु उसे कोई सन्तान नहीं हुई। समाजमें पुत्रहीना कुलवधुओंको लोग अभागिनी समझते हैं और इस कारण भी उन्हें बहुत कुछ सहना पड़ता है। लोग उन्हें तरह-तरहके दुर्वचन सुनाते हैं और उसपर दूसरा विवाह कर लेनेकी धमकी भी देते हैं। कुँवरबाई और दुःखोंको तो सह ही रही थी, यह दुःख उसके लिये असहनीय हो गया। क्योंकि इसमें उसका दोष ही क्या था अथवा इसके लिये स्वयं वह कर ही क्या सकती थी? कुँवरबाईके ससुर श्रीरंगधर मेहता राज्यके एक उच्च पदपर थे। वह स्वयं एक विचारशील तथा दयालु स्वभावके पुरुष थे। वह पुत्रवधूके कष्टोंसे बिलकुल अपरिचित नहीं थे; फिर भी वह इस मामलेमें कुछ करनेमें असमर्थ थे। अतएव वह बेचारी एक मूक पशुकी भाँति सब सुनती-सहती थी और एकमात्र भगवान्‌से अपने दुःख सुनाकर सन्तोष कर लेती थी।

कहते हैं, जब मनुष्य सब ओरसे आशाएँ छोड़कर केवल एक भगवान्‌को दीनभावसे पुकारता है, तब उसकी पुकार भगवान्‌के कानोंमें अवश्य पहुँचती है और फिर भगवान्‌को उस प्राणीका कष्ट दूर किये बिना चैन नहीं मिलती। आखिर असहाया कुँवरबाईकी भी मूक आवाज भगवान्‌तक पहुँच ही गयी और भगवान्‌ने उसपर कृपा की। वह गर्भवती हुई और धीरे-धीरे उसका गर्भ सात-आठ मासका हो गया।

गुजरात-काठियावाड़में पुत्रवधूका सीमन्त-प्रसंग बड़े धूमधामके साथ मनाया जाता है और दो दिनतक जातिभोज दिया जाता है। जिस स्त्रीका सीमन्त होता है उसका पिता पुत्री तथा पुत्रीके सारे कुटुम्बियोंको यथाशक्ति वस्त्रादि देकर सन्तुष्ट करता है। उच्च कुलोंमें तो वेदरहित सीमन्त-संस्कार शास्त्रोक्त विधिके साथ किया जाता है।

कुँवरबाईका भी सीमन्त-मुहूर्त माघ शुक्ला सप्तमीके दिन निश्चित हुआ। सभी सम्बन्धियोंके पास आमन्त्रणपत्रिका भेज दी गयी। परंतु कुँवरबाईके पिता नरसिंहरामकी निर्धनताका खयाल कर उनके पास कुंकुमपत्रिका नहीं भेजी गयी। जब इस बातकी खबर कुँवरबाईको हुई तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने सासके पास जाकर बड़ी नम्रताके साथ पूछा— 'सासजी! क्या जूनागढ़ मेरे पिताजीके पास कुंकुमपत्रिका नहीं भेजी गयी है?'

'वह क्या करेगा जो उसे कुंकुमपत्रिका भेजी जाती? हमारे इतने विशाल कुटुम्बके लिये वह चीर कहाँसे जुटायेगा? उसके घर तो शंख बज रहा है।' सासने रुखाईके साथ उत्तर दिया।

'सासजी! आपका कहना ठीक है, परंतु माता-पिताका प्रेम अपनी सन्तानपर कितना होता है, इस बातको आप जानती ही हैं। स्थिति खराब होनेपर भी वह अवश्य मेरी साध पूरी करनेका कुछ प्रयत्न करेंगे। आप उनके पास आमन्त्रणपत्र अवश्य भेज दीजिये।' कुँवरबाईने आग्रहपूर्वक निवेदन किया।

'माँ! भाभीका कहना ठीक है, जरूर निमन्त्रण भेजो। उनकी शक्ति तो है ही साधुओंके साथ यहाँ आकर हमलोगोंको गोपीचन्दन, तुलसीके हार और कौपीन देनेकी और हमलोगोंको भी अपना-सा लंगोटाधारी साधु बना देनेकी। माताजी! उनको तो अवश्य बुलावा भेजना चाहिये।' बीचमें ही कुँवरबाईकी ननद ताना मारते हुए बोल उठी।

ननदके इस कटाक्षसे कुँवरबाईके हृदयको बड़ा धक्का लगा। उसकी आँखोंमें बरबस आँसू भर आये। एक कुलीन कुलवधूके पास रुदनके सिवा और बल ही क्या रहता है?

'सासजी! आप ऐसी निर्दयता न कीजिये, मेरे पिताजीके पास समाचार अवश्य भेज दीजिये। अगर वह कुछ न भी लावें तो आपके पास कमी ही किस बातकी है? कम-से-कम हम पिता-पुत्रीकी मुलाकात तो हो ही जायगी। मैं जबसे आयी हूँ तबसे जूनागढ़ एक बार भी नहीं गयी। आप जानती ही हैं, इसी बीच मेरे भाईका और मेरी माँका भी देहान्त····।' इतना कहते-कहते कुँवरबाईका गला भर आया और वह फूट-फूटकर रोने लगी।

इस समय कुँवरबाईका विलाप सुनकर कोई भी वज्रहृदय द्रवित हुए बिना न रहता। परंतु फिर भी उसकी सासके

हृदयपर तनिक भी असर न हुआ। उसने उस विलापका भी उलटा ही अर्थ निकाला। वह कहने लगी—'देखो, कैसी गरीब गाय-जैसी बन जाती है। यहाँ 'पिताजी-पिताजी' कह रही है और वहाँ कोई पूछता भी नहीं। यदि उस निगोड़ेमें किंचित् भी प्रेम होता तो किसी दिन यहाँ आकर बेटीकी खबर न ले जाता? जबसे आयी तबसे एक चिड़िया भी तो झाँकने नहीं आयी! उसे काहेका प्रेम? उसे तो प्रेम है मुफ्तका माल खानेसे और टोपी-लँगोटी धारण करके नाचने-कूदनेसे।

टोपीमें है तीन गुन, नहिं मुनीम नहिं सेठ।
बाबा बाबा सब करें, और भरे खुशीसे पेट॥

फिर उसको और चाहिये भी क्या? बस, दिनभर शालिग्राम पत्थरसे माथाकूट····!'

वह इसी धुनमें न मालूम और क्या-क्या कह डालती; किंतु इसी बीच श्रीरंगधर मेहता घरमें आ गये और मामला शान्त हो गया। उन्होंने पत्नीकी आवाज तथा बहूकी रुलाई सुनकर किंचित् क्रोधावेशमें पूछा—'क्या बात है? आज बहू रो क्यों रही है? तुम दोनों माँ-बेटी क्यों इस गरीब लड़कीके पीछे बराबर लगी रहती हो?'

'बात कुछ नहीं है। बहू कहती है कि मेरे पिताजीके पास कुंकुमपत्रिका भेजिये और मैं कहती हूँ कि कोई जरूरत नहीं।' श्रीरंगधरकी पत्नीने उत्तर दिया।

'इसमें कौन बात है? मैंने तो इसलिये पत्रिका नहीं भेजी कि इससे भक्तराजके भजनमें व्यर्थ बाधा पहुँचेगी और कुछ व्ययका भार आ जानेसे उन्हें कष्ट भी होगा। यदि बहूकी ऐसी ही इच्छा है तो मैं आज ही ब्राह्मणके

हाथ कुंकुमपत्रिका भेज देता हूँ।' श्रीरंगधर मेहताने शुद्ध हृदयसे आश्वासन देते हुए कहा।

अपने वचनके अनुसार श्रीरंगधर मेहताने तुरंत एक ब्राह्मणको बुलाया और आमन्त्रणपत्र उसे देकर जूनागढ़ भेज दिया। कुँवरबाईको इस बातसे सन्तोष हुआ और वह प्रसन्नतापूर्वक अपने गृहकार्यमें लग गयी।

भक्तसुताका सीमन्त

संसारमें रहकर भगवान्‌की भक्ति करना दोधारी तलवारके साथ खेलनेके समान है। ऐसे भक्तोंके सामने एक ओर सांसारिक बाधाएँ दीवालकी तरह खड़ी हो जाती हैं और दूसरी ओर शुद्ध-सात्त्विक जीवनकी सुनहली झलक उन्हें अपनी ओर खींचती है। फिर भी भक्त भगवान्‌की कृपासे अपने सांसारिक और पारमार्थिक दोनों कार्योंको शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार ठीक-ठीक सम्पन्न करते हैं।

मध्याह्नका समय हो चुका था। भगवान्‌का पूजन करके नरसिंहराम भोजनकी तैयारी कर रहे थे। ठीक इसी समय श्रीरंगधर मेहताके भेजे हुए ब्राह्मणने आकर उनके हाथमें कुंकुमपत्रिका दी। पत्रिका खोलकर वह बाँचने लगे—

परमस्नेही भक्तराज श्रीनरसिंहरामजी!

सप्रेम भगवत्स्मरण।

आपकी पुत्री कुँवरबाईका सीमन्त-मुहूर्त माघ शुक्ला सप्तमी रविवारको निश्चित हुआ है। अतः आपसे निवेदन है कि आप इस शुभ अवसरपर अपने इष्ट-मित्रोंके साथ पधारकर मेरे आँगनकी शोभा बढ़ानेकी कृपा करें। यहाँ सब तरहसे कुशल है। आशा है, आप भी कुशलपूर्वक होंगे।

आपका—

श्रीरंगधर राय

मेहताजीने ब्राह्मणका यथोचित सत्कार किया और दूसरे दिन विदा कर दिया।

भक्तराजने अपने मनमें विचार किया—आजतकके व्यावहारिक कार्योंमें और मेरे जीवनमें भी यह अन्तिम प्रसंग है। अतः यथाशक्ति देकर पुत्रीको सन्तुष्ट करना चाहिये। किंतु····। इसके लिये मुझे क्या? मैं व्यर्थ क्यों चिन्ता करूँ? वही भक्तवत्सल भगवान् मेरे इस अन्तिम प्रसंगको भी सिद्ध करेंगे।

भक्तराजने किसी सेवककी टूटी बैलगाड़ी और बूढ़े बैलोंको जोतकर जूनागढ़से प्रस्थान किया। उनके साथ दो-चार साधुओंका समुदाय था और सामानमें केवल भगवान्‌की प्रतिमा, करताल तथा गोपीचन्दनादि पूजाकी सामग्री थी। प्रायः आठ-दस दिनमें भजन-कीर्तन करते हुए वह ऊना पहुँच गये।

श्रीरंगधर मेहताके घर खूब धूमधामके साथ उत्सवकी तैयारी हो रही थी। भक्तराजके आनेका समाचार सुनकर वह उनसे मिलनेके लिये आये। उन्होंने कुशल-समाचार पूछकर एक पुराने मकानमें उनके ठहरनेका प्रबन्ध कर दिया। सभ्यसमाज तो भक्तिको एक खेलवाड़ समझता है। भला ऐसे व्यर्थ तमाशा करनेवालेको किसी सुन्दर स्थानमें उतारनेसे क्या लाभ?

परंतु हमारे भक्तराजके लिये तो पर्णकुटी और राजभवन एक समान थे। उन्होंने भगवान्‌की प्रतिमाको एक किनारे स्थापित कर दिया और स्नानादि करके नियमानुसार श्रीकृष्णकीर्तनमें प्रवृत्त हो गये।

पिताके आनेकी खबर सुनकर कुँवरबाईको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह उनसे मिलनेके लिये उस स्थानपर आयी। परंतु वहाँका ढंग देखकर उसे बड़ी निराशा हुई और उसकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी।

'बेटी! क्यों रो रही है?' भजन पूरा करके भक्तराजने पूछा।

'पिताजी! सारी नागर-जाति मेरा मजाक उड़ा रही है। यदि आप इस साधु-मण्डलीको साथ न लाकर अपने कुछ भाई-बन्धुओंको साथ ले आते तो इन लोगोंको बुरा न मालूम होता।' कुँवरबाईने उत्तर दिया।

'पुत्री! तुम उन लोगोंकी बातपर क्यों ध्यान देती हो? तुम नहीं जानती कि गंगा पापका, शशि तापका और कल्पतरु दरिद्रताका नाश करता है, परंतु महाजन सन्तलोग पाप, ताप और दरिद्रता—तीनोंका नाश करते हैं। फिर इनसे बढ़कर अपने आत्मीय और सम्बन्धी कौन हैं? सांसारिक भाई-बन्धु तो बस स्वार्थपर निर्भर करते हैं। अगर स्वार्थ सिद्ध न हो तो माता-पिता, भाई-बहन, सगे-सम्बन्धी जितने हैं, सभी बिराने हो जाते हैं। अतएव मैं ऐसी कल्याणकारिणी साधु-मण्डलीको छोड़कर स्वार्थी सम्बन्धियोंका संग जान-बूझकर कैसे करूँ?' नरसिंहरामने कहा।

'अच्छा, पिताजी! संगकी बात जाने दीजिये। बतलाइये, मेरी सास, ननद और अन्य कुटुम्बियोंके लिये आप चीर किस प्रकारके लाये हैं?' कुँवरबाईने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

'पुत्री! तुम तो जानती ही हो कि तुम्हारा यह कंगाल पिता कुछ भी करनेकी शक्ति नहीं रखता, जो कुछ करना होगा, वही दीनदयालु करेंगे।' भक्तराजने निश्चिन्ततापूर्वक उत्तर दिया।

'पिताजी! कल ही तो सीमन्तका मुहूर्त है और आप साथमें कुछ भी लाये नहीं, फिर भगवान् किस प्रकार पहुँचा जायँगे। वह कहाँ रहते हैं, यह भी तो निश्चित नहीं!' अधीर होकर कुँवरबाईने कहा।

'बेटी! तुम यह क्या कह रही हो? तुम इतना घबड़ा क्यों रही हो? तुमने तो उन प्रभुकी दीनदयालुता प्रत्यक्ष देखी है। तुम्हारे भाई शामलदासके विवाह-कार्यमें उन्होंने कितना परिश्रम किया था? तुम्हारी बिदाई स्वयं भगवान्‌ने ही तो की थी। फिर तुम्हारे हृदयमें ऐसी शंका क्यों उत्पन्न हुई? उनका निवास तो जड़-चेतन, आकाश-पाताल और पृथ्वीमें सर्वत्र है। अतः तुम निश्चिन्त होकर अपने घर जाओ; भगवान् सब कुछ अच्छा ही करेंगे।' भक्तराजने कुँवरबाईका समाधान करते हुए कहा।

कुँवरबाई कुछ आश्वस्त होकर अपने घर वापस चली गयी और गृहकार्यमें प्रवृत्त हो गयी। इधर नरसिंह मेहता भगवान्‌को नैवेद्य प्रदान करके साधु-मण्डलीके साथ श्रीरंगधर मेहताके घरपर आये। वहाँ जातिभरके लोग एकत्र हुए थे और भोजनकी तैयारी हो रही थी। लोग स्नान कर-करके भोजनके लिये बैठ रहे थे। नरसिंहराम भी स्नान करने बैठे; परंतु जल इतना अधिक गरम था कि उसे स्पर्श करना भी कठिन था। उन्हें क्या पता कि परीक्षाके लिये जान-बूझकर इतना गरम जल दिया गया है। उन्होंने सरलतापूर्वक थोड़ा-सा ठण्डा जल माँगा।

इसपर कुँवरबाईकी सासने परिहास करते हुए कहा—'आप तो भगवान्‌के प्यारे भक्त हैं; आकाशसे वृष्टि कराकर भगवान्‌से ठण्डा जल ले लीजिये।'

वहाँपर जितने नागर उपस्थित थे, सबने व्यंगमें एक स्वरसे कहा, 'हाँ, हाँ ठीक तो है, भक्तराजजीके लिये यह कौन बड़ी बात है।' भक्त बड़े पेशोपेशमें पड़े। सोचा, 'सब लोग भोजनके लिये तैयार बैठे हैं, जबतक वृष्टि

नहीं होगी तबतक सब लोग बिना भोजनके ही रहेंगे और इधर ये लोग जल भी नहीं देना चाहते। खैर, भगवान्‌की जैसी इच्छा।'

इतना सोचकर उन्होंने अपनी करताल मँगायी और मल्हार रागमें भगवान्‌का कीर्तन शुरू कर दिया। कीर्तनका भाव इस प्रकार था—

'भगवन्! क्या आपने सुधन्वाकी तेलकी कढ़ाईको अपनी कृपासुधाके द्वारा शीतल नहीं बना दिया था? यह भी तो उसी प्रकारका कार्य है प्रभो! आपने अनेक बार मुझे सहायता दी है; क्या इस धर्मसंकटसे मुझे पार उतारनेमें आप असमर्थ बन जायँगे? हे मेरे श्यामघन! तुरंत जल बरसानेकी कृपा करें और इन मजाक करनेवालोंका मुँह बन्द कर दें।'

भजन समाप्त होते-होते माघ मासका निर्मल आकाश घनघोर काली घटाओंसे छा गया। देखते-देखते सावन-भादोंकी तरह मूसलाधार जल बरसने लगा। बने-ठने सब लोग भींग गये, भगवान्‌की कृपासे भक्तराजका उष्णोदक शीतल हो गया, वर्षा बन्द हुई तब स्नान करके वह भी सब लोगोंके साथ भोजन करनेके लिये आसनपर बैठ गये। सब लोग उनकी भक्ति देखकर आश्चर्यमें डूब गये। फिर भी सबको भगवान्‌पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने समझा, इसमें नरसिंहरामकी कोई जादूगरी होगी!

दूसरे दिन प्रातःकालसे ही सीमन्त-संस्कार आरम्भ हो गया। श्रीरंगधर मेहताका आँगन विद्वान् ब्राह्मण, सगे-सम्बन्धी, कुलपरिवार, युवा-वृद्ध-बालक, स्त्री-पुरुष इत्यादिसे खचाखच भरा हुआ था। नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे और मंगल गीत गाये जा रहे थे। धीरे-धीरे वैदिक विधिके अनुसार

सांगोपांग सीमन्त-संस्कार सम्पन्न हुआ। अब सम्बन्धियोंको चीर प्रदान करनेका समय उपस्थित हुआ। कुँवरबाईने आँख उठाकर एक बार अपने पिताजीकी ओर देखा, मानो संकेत द्वारा चीर प्रदान करनेकी बात उसने स्मरण करायी!

भक्तराजने अवसर उपस्थित देख अपनी करताल उठायी और कीर्तन करते हुए भगवान्‌को पुकारना आरम्भ किया। उन्होंने जो भजन गाया, उसका तात्पर्य इस प्रकार था— 'हे भक्तवत्सल परमात्मन्! मैं आपका हूँ, आप मेरे हैं; फिर आप क्या इस अन्तिम व्यावहारिक कार्यमें मुझे सहायता नहीं देंगे? प्रभो! आपने तो यह वचन दिया है कि—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा० रा० ६। १८। ३३)

अर्थात् 'जो एक बार भी मेरे शरण होकर 'मैं तुम्हारा हूँ' कहकर याचना करता है, उसको मैं सब भूतोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है।'

इस प्रकार भजन करते-करते भक्तराज तन्मय हो गये। उधर उपस्थित स्त्रियोंमें भक्तराजके इस कार्यके विषयमें चर्चा होने लगी। एक स्त्रीने कहा—'देखो, इस वैरागियेको। क्या यही चीर देनेका ढंग है? इस प्रकार गाने-नाचनेसे भला भगवान् आकर चीर दे जायँगे?'

'तुम्हें इतना भी मालूम नहीं? अरे, पासमें रखा हुआ शंख और गोपीचन्दन तो हमें मिल ही जायगा!' दूसरीने हँसते हुए कहा।

यह सुनकर सभी स्त्रियाँ हँस पड़ीं। कुँवरबाई लज्जा और अपमानके मारे सिकुड़ गयी, सोचने लगी, धरती फटे

तो उसमें समा जाऊँ। परंतु बेचारी मौन रहनेके सिवा और इस समय कर ही क्या सकती थी? एक धर्मपरायणा अनुभवी वृद्धा स्त्रीने सबको मना करते हुए कहा—'भगवान्‌के ऐसे ऐकान्तिक भक्तकी हँसी नहीं उड़ानी चाहिये। मालूम नहीं वे क्या लीला कर डालें। भगवान्‌की सच्ची भक्तिके बलपर क्या नहीं हो सकता? क्या तुमलोगोंने द्रौपदीके चीर बढ़नेकी बात नहीं सुनी है?'

जगत्‌में समालोचकोंकी कोई कमी नहीं। प्रत्येक मनुष्य चाहे उसे कुछ जानकारी हो या न हो, अपनी बुद्धिके अनुसार दूसरेकी समालोचना करता ही रहता है। समालोचनाकी इतनी प्रबल बाढ़ चला करती है कि यदि साधक अस्थिर चित्तवाला हो तो उसे पथभ्रष्ट होते भी देर नहीं लगती। भक्तराज नरसिंहराम तो ऐसी सांसारिक बाधाओंसे एकदम परे थे, उन्हें इतनी कहाँ फुरसत थी कि वह दूसरोंकी समालोचना सुनते? वह तो तन्मय होकर बस भगवान्‌का आवाहन कर रहे थे। आखिर उनकी एकमुखी दीन पुकार सात लोकोंको भेदकर दिव्य भगवद्धाममें पहुँच ही गयी और भक्तवत्सल भगवान् तत्काल भक्तका कार्य करनेके लिये तीव्र गतिसे चल पड़े।

भक्तराजका कीर्तन समाप्त होते ही मंगल गीत गाती हुई अनेकों दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित दिव्य तेजोमयी सुन्दरियोंके साथ एक सेठके रूपमें स्वयं भगवान्‌ने संस्कार-मण्डपमें प्रवेश किया। इस रहस्यको दूसरा कोई नहीं जान सका। जानता भी कैसे? इन चर्मचक्षुओंके द्वारा योगमायासमावृत भगवान्‌के दिव्य विग्रहके दिव्य दर्शन दूसरोंको कैसे हो सकते थे? भक्तराज भगवान्‌को पहचानकर उनके चरणोंपर लोट गये।

सेठरूपधारी भगवान्ने अपना परिचय देते हुए श्रीरंगधर मेहतासे कहा—'श्रीरंगधरजी! नरसिंहजी मेरे अभिन्न सखा हैं। मैं द्वारिकामें रहकर इनके साझेमें व्यापार करता हूँ। मेरी सारी सम्पत्ति इन्हींकी कृपाका फल है।'

इतना कहकर सेठजीने अपने ही हाथों समस्त सम्बन्धियोंको अमूल्य वस्त्राभूषण प्रदान किये। जाति-प्रथासे बहुत अधिक ढेर-के-ढेर चीर प्रदान करके उन्होंने सबको सन्तुष्ट किया। सभी उपस्थित लोगोंने विस्मयके साथ इस लीलाको देखा और सबने भक्तराजकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

भक्तराजने गद्गद कण्ठसे भगवान्का हार्दिक स्वागत किया। श्रीरंगधरके आग्रह करनेपर भगवान्ने उस दिन उनका आतिथ्य स्वीकार किया और दूसरे दिन वहाँसे विदा होकर अन्तर्हित हो गये। साधु-मण्डलीके साथ भक्तराज भी जूनागढ़ लौट आये।

द्वेषका प्रतीकार

मनुष्यके जीवनमें कोई एक बात भी विचित्र हो जाती है तो उसकी ख्याति सर्वत्र फैल जाती है; फिर जिसका सारा जीवन ही रहस्यमय हो, अपूर्व हो, वह भला कबतक संसारकी आँखोंसे अपनेको छिपा सकता है? भक्तश्रेष्ठ नरसिंहराम जबसे बड़े भाईसे अलग हुए थे तभीसे उनका जीवन दुनियाकी दृष्टिमें रहस्यमय हो रहा था। रोजगार कुछ भी नहीं, दिन-रात भजन-कीर्तनमें लगे रहते थे, वेष गरीबों-सा था; परंतु अवसर आनेपर उनका खर्च देखते ही बनता था, बड़े-बड़े श्रीमन्तोंके यहाँ भी सम्भवत: उस ढंगसे कार्य नहीं होता था। सब लोग इस बातपर हैरान थे कि आखिर यह मामला क्या है। जब पुत्रीका सीमन्त सम्पन्न कराके नरसिंहजी लौटे तब उनका यश और भी अधिक बढ़ गया। सर्वत्र उन्हींकी चर्चा होने लगी।

किंतु इस सुयशको उनकी जातिके ईर्ष्यालु लोग कैसे सह सकते थे? नरसिंहरामकी बड़ाई सुनकर उन्हें मानो जूड़ी चढ़ आयी और वे इस रोगकी जड़ ही काटनेकी चिन्तामें लग गये। उच्च मनुष्यकी बराबरी न कर सकनेपर दुष्ट मनुष्य ईर्ष्यावश उसे किसी भाँति नीचे गिराकर भी अपनी बड़ाई बचानेकी व्यर्थ चेष्टा किया करते हैं। परंतु ऐसे लोगोंके कारण सत्पुरुषोंकी कभी तनिक भी हानि नहीं होती, वरं उनकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ जाती है और ऐसा प्रयत्न करनेवालोंको ही उलटे मुँहकी खानी पड़ती है। फिर भी दुर्जन अपनी मूढ़तावश बाज नहीं आते!

नागर-जातिके कुछ लोगोंने एक षड्यन्त्र रचा, जिसमें सारंगधर और नरसिंहरामके बड़े भाई वंशीधर भी शामिल थे।

उन लोगोंने शहरकी सबसे मशहूर और सुन्दरी वेश्या चंचलाको रुपयोंका लालच देकर भक्तराजके पास उन्हें अपने मोहपाशमें फँसानेके लिये भेजा।

सायंकालका समय था। सन्ध्याकालकी पूजा, आरती इत्यादि समाप्त करके साधु-मण्डलीके बीचमें उपस्थित होकर भक्तराज हरि-कीर्तन करनेकी तैयारी कर रहे थे। धूप-पुष्पकी सुवास और भगवान्‌के सान्निध्यके कारण वहाँका वातावरण बड़ा ही पवित्र और आनन्दमय हो रहा था। ठीक इसी समय श्वेत वस्त्र धारण किये, गोपीचन्दनका तिलक किये और गलेमें तुलसीकी माला पहने चंचलाने भक्तराजके घरमें प्रवेश किया। उस समय वह एक भक्तिमती साध्वीकी तरह शोभा दे रही थी। उपस्थित सन्तोंको 'जय श्रीकृष्ण' करके वह एक ओर बैठ गयी और बड़े भावके साथ सबके संग मिलकर हरि-कीर्तन करने लगी। सभी साधु, यहाँतक कि स्वयं भक्तराज भी मन्त्रमुग्धकी तरह उसकी तन्मयता देखने लगे।

भजन समाप्त होनेपर भक्तराजने चंचलासे प्रश्न किया—'बहन! आपका शुभ निवास कहाँ है?'

'मेरा निवास प्रभास-क्षेत्रमें है; मैं द्वारिकाजी जा रही हूँ। आपका नाम सुनकर एक कार्यके लिये मैं आपके पास आयी हूँ।' चंचलाने अपना मिथ्या परिचय दिया।

'ऐसा कौन-सा कार्य है जिसके लिये आपको मेरे पास आनेकी जरूरत पड़ी?' भक्तराजने विस्मयके साथ प्रश्न किया।

'मैं एक दान लेनेकी इच्छासे यहाँ आयी हूँ।' चंचलाने उत्तर दिया।

'साध्वी! यदि तुम्हें किसी तरहका दान लेनेकी इच्छा है तो तुम किसी श्रीमन्तके घरपर जाओ। मेरे पास तो इस करताल,

मृदंग और गोपीचन्दनके अतिरिक्त और कोई भी वस्तु नहीं है।' भक्तराजने सरलतापूर्वक कहा।

'भक्तराज! जो वस्तु मैं आपसे लेना चाहती हूँ, उसे मैं और किसीसे लेना नहीं चाहती। यदि आप मेरे ऊपर कृपा करें तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँगी।' चंचलाने विनय दिखाते हुए कहा।

'अच्छा बोलो, तुम्हें किस वस्तुकी चाह है? यदि भगवान्की इच्छा हुई तो मिल ही जायगी।' भक्तराजने उदासीनतापूर्वक कहा।

'आपकी आज्ञा हो गयी बस, इस समय इतना ही पर्याप्त है। पीछे समय आनेपर मैं आपसे माँग लूँगी।' चंचलाने कहा।

विकारी मनुष्योंकी दृष्टिमें सभी मनुष्य अपने-जैसे विकारी ही दिखायी देते हैं। वे शुद्ध मनुष्यको भी विकारी ही मान बैठते हैं। शुद्ध मनुष्यके ज्ञानयुक्त शब्द भी उनको विकारके सूचक मालूम होते हैं और वे उनका उलटा अर्थ लगाकर अपना अभीष्ट सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं। चंचलाने भी भक्तराजके शब्दोंका उलटा ही अर्थ लगाया। उसने समझा, भक्तराजने मेरे रूपपर मोहित होकर ही मेरी याचना स्वीकार की है।

भजन समाप्त होनेपर सब लोग अपने-अपने आसनपर जाकर सो गये। चंचलाको भी भक्तराजने एक उपयुक्त स्थान सोनेके लिये दिखा दिया। अन्तमें वह भी मन्दिरके दरवाजेपर अपना आसन लगाकर सो गये। धीरे-धीरे सब लोग गहरी निद्रामें डूब गये। परंतु चंचलापर निद्रादेवीने कृपा नहीं की, वह तो अपने स्वार्थ-साधनकी चिन्तामें उपयुक्त समयकी प्रतीक्षा कर रही थी।

आधी रात बीत जानेपर जब चंचलाको विश्वास हो गया कि

अब कोई जगा नहीं होगा, तब उसने अपने सादे कपड़े उतारकर सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये। उस समय उसकी मुखाकृति, शरीरकी गठन और श्रृंगार देखनेसे वह कोई देवांगना-सी प्रतीत हो रही थी।

वह अपने आसनसे उठी और मन्दगतिसे भक्तराजके आसनके पास आयी। उसके चरणोंकी नूपुर-ध्वनि सुनकर भक्तराज जग उठे।

'कौन है, इस समय?' भक्तराजने प्रश्न किया।

'मैं वही हूँ जो आपके साथ भजन कर रही थी।' चंचलाने उत्तर दिया।

'फिर इस समय तुम यहाँ क्यों आयी?' भक्तराजने पुनः प्रश्न किया।

'नरसिंहरामजी! मैं आज आपके पास ऋतुदान लेने आयी हूँ, जिसके लिये आपसे शामको मैंने प्रार्थना की थी। मैं अन्य किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करती। आप····।' चंचलाने कहा।

चंचलाकी निर्लज्जताको देखकर नरसिंहराम अवाक् हो गये। उनके मुँहसे केवल 'हरि-हरि' शब्द निकल पड़ा।

चंचलाने पुनः अधीर होकर कहा—'भक्तराज! आप अब मुझे अधिक न सताइये; शीघ्र मेरी मनःकामना पूरी करके मुझे सन्तुष्ट कीजिये।'

'साध्वी! तुम यह क्या कह रही हो? क्या मेरे पास तुम यही दान लेनेके लिये आयी हो? साधुका स्वाँग धारणकर ऐसा नीच विचार मनमें भी रखनेसे मनुष्य पापका भागी बनता है और अन्तमें अधःपतनके गहरे गर्तमें गिरता है। मनुष्य-जीवन पाप करनेके लिये नहीं, अक्षय पुण्यका उपार्जन करनेके लिये है; व्यभिचारके लिये नहीं, संयमके लिये है; वासनाकी तृप्तिके लिये

नहीं, शुद्ध सात्त्विक प्रेम प्राप्त करनेके लिये है; चरित्रका सर्वनाश करनेके लिये नहीं, सच्चरित्रताका संग्रह करनेके लिये है; अविद्याकी उपासना करना मनुष्य-जीवनका लक्ष्य नहीं है, बल्कि अविद्याका नाश कर सद्विद्याका सेवन करना है।' कहा है—

लब्ध्वा कथञ्चिन्नरजन्म दुर्लभं
तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम्।
यस्त्वात्ममुक्त्यै न यतेत मूढधीः
स आत्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात्॥

अर्थात् 'पूर्वोपार्जित पुण्यके प्रभावसे यह दुर्लभ मनुष्यदेह तथा वेदज्ञानसम्पन्न पुरुषत्व प्राप्त होनेपर भी जो मूढ़बुद्धि मनुष्य मोक्षके लिये प्रयत्न नहीं करता, वह आत्मघाती मनुष्य असत्-संसारको ग्रहण करके स्वयं अपना नाश करता है।'

साध्वी! विषयोंकी तृष्णा, संसारके अन्य पदार्थोंकी तृष्णा तथा मान-कीर्ति आदिकी तृष्णा मनुष्यको बलात् नरककी ओर ले जाती है। फिर यदि एक बार इन तृष्णाओंकी पूर्ति भी कर दी जाय तो मनुष्यको उनसे शाश्वत सुख कदापि नहीं मिल सकता। बल्कि इन तृष्णाओंको प्रोत्साहन देनेसे ये और भी बढ़ती हैं। उम्र बीत जाती है, शरीर बूढ़ा हो जाता है, परंतु तृष्णा बूढ़ी नहीं होती। यह कामनाकी आग विषयरूपी ईंधनसे बुझती नहीं, ज्यादा धधकती है और मनुष्यकी समस्त सुख-शान्तिको भस्म करके फिरसे जन्म-मरणके भयानक चक्करमें डाल देती है। अतएव इस तृष्णाका नाश करना ही मोक्षका प्रधान साधन है; भोगोंकी प्राप्तिसे तृष्णाका शमन नहीं होता। क्योंकि—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

(मनुस्मृति २। ९४)

'घृतकी आहुतिसे अग्नि विशेष प्रज्वलित होती है, इसी प्रकार इच्छाओंकी तृप्ति करनेसे वे भयंकर रूप धारण करके मनुष्यका सत्यानाश करनेमें सहायता करती हैं।'

संसार भी एक प्रकारका महारोग है; उसको दूर करनेके लिये भगवन्नामस्वरूप दिव्य ओषधि बड़ा ही उपकार करनेवाली है। परंतु उस ओषधिसेवनके साथ-साथ विषयादिरूप कुपथ्यका सेवन करते रहनेसे नये-नये रोगके अंकुर उत्पन्न होते रहते हैं और इसलिये महारोगका नष्ट होना कष्टसाध्य हो जाता है। इतना ही नहीं, विषयासक्तिके बढ़ जानेसे भगवन्नाम छूट जाता है और यह महारोग सन्निपातका भीषण स्वरूप धारण कर लेता है।

यह जीव अनेक जन्मोंसे संसारके इन्द्रियजनित विषयसुखका अनुभव करता आ रहा है, परंतु फिर भी उसको तनिक भी सन्तोषका अनुभव नहीं हुआ है। अतः शास्त्रकारोंने तथा अनुभवी महात्माओंने यह निश्चय किया है कि यह संसार अनित्य और सुखहीन ही है। भगवान्ने कहा है—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

(गीता ९। ३३)

'इस अनित्य और सुखहीन संसारको पाकर मुझको भजो।' अतएव केवल आत्मचिन्तन और भजनका दिव्य आनन्द ही सच्चा सुख है। विषयोंका आनन्द तो मूर्खता-से प्रतीत होता है। भक्तराजने कहा।

भक्तराजके इस विस्तृत विवेचनने चंचलाके हृदयको एकदम पलट दिया। उसके जन्म-जन्मान्तरके कुसंस्कारोंपर मानो जादूका-सा असर हो गया और वे उसके हृदय-पटलपरसे अपने-आप खिसकने लगे। विषयगन्धसे अपवित्र बना हुआ उसका तमोमय स्वरूप सत्संगकारी पूर्णिमाके संसर्गसे निर्मल

चन्द्रमाकी भाँति विकसित होने लगा। उसके सौन्दर्यमें सात्त्विक शान्तिका सम्मिश्रण हो गया!

'क्षमा कीजिये भक्तराज! आज आपने मुझे प्रगाढ़ अन्धकारमेंसे निकालकर परम प्रकाशमें पहुँचा दिया। आजसे आप ही मेरे सच्चे सद्गुरु हैं। आपके सदुपदेशने मेरे विकारोंको निर्मूल कर दिया। परन्तु···मैंने आजतक पाप कमानेमें कोई कसर नहीं रखी है। मेरे दु:संगसे अनेक सुशील युवक पथभ्रष्ट होकर नष्ट-भ्रष्ट हो चुके हैं। आज अपने कुकृत्योंका स्मरण कर मेरा कलेजा काँप उठता है। उन्हें देखते हुए तो ऐसा मालूम होता है कि मुझे रौरव नरकमें भी स्थान मिलना कठिन है। आप मेरे कल्याणमार्गके निर्देशक बनकर मुझे उचित शिक्षा दीजिये।' गद्गद कण्ठसे यों कहती हुई चंचला भक्तराजके चरणोंमें गिर पड़ी।

'पुत्री! अनेक प्रकारके पाप करनेपर भी यदि मनुष्य सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप करे तो वह उन पापोंसे मुक्त हो जाता है। फिर भगवान्‌का अनन्य चिन्तन तो पतित मनुष्योंको भी पावन बनानेके लिये प्रसिद्ध ही है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३०-३१)

'अतः तुम अपने घरपर जाकर भगवान्‌का अनन्यमनसे प्रेमपूर्वक स्मरण करो; तुम्हारे लिये यही सच्ची शिक्षा है। मैं गुरु बनना नहीं चाहता, क्योंकि मुझमें ऐसी योग्यता ही नहीं है।' भक्तराजने कहा।

चंचला भक्तराजकी आज्ञा शिरोधार्य कर अपने घर चली

गयी। उसने उसी दिनसे अपनी वेश्यावृत्ति छोड़ दी और बहुत सादगीके साथ रहकर भगवद्भजन तथा साधुसेवामें जीवन बिताने लगी।

आठ-दस दिन बाद सारंगधर चंचलाके घर गया। वहाँका नया रंग-ढंग देखकर वह तो दंग रह गया। चंचला उस समय साधु-मण्डलीमें बैठकर भजन कर रही थी। उसके चेहरेपर एक अलौकिक तेज खेल रहा था।

'क्यों चंचले! उस विषयमें क्या हुआ?' सारंगधरने पूछा।

'सारंगधरजी! आप निरपराध भक्तराजको व्यर्थ ही दोष लगाकर महान् पापके भागी बनना चाहते हैं। परन्तु याद रखिये दूसरेके लिये जमीनमें गड्ढा खोदनेवाला मनुष्य खुद ही उसमें गिर पड़ता है। आपलोगोंका द्वेष उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। मुझे तो घृणा होती है कि आपलोग जातिके अग्रगण्य, कर्णधार होते हुए भी दूसरे मनुष्यका उत्कर्ष नहीं सह सकते। मैं इससे अधिक आपसे बातें करना नहीं चाहती; आप जानें और आपका काम जाने।' इतना कहकर चंचला पुनः भगवद्भजनमें लीन हो गयी।

परमात्माकी कला अकल है। चंचलाके यहाँसे तिरस्कृत होकर जब सारंगधर वापस लौटा तो मार्गमें एक भयंकर सर्पने उसे डँस लिया। पलभरमें सर्पका विष उसके रोम-रोममें फैल गया। वह मार्गमें ही बेहोश होकर गिर पड़ा। देखते-देखते वहाँ बहुत-से लोग एकत्रित हो गये। नाना प्रकारके उपचार किये गये, परन्तु विष नहीं उतरा। लोग उसके जीवनसे निराश हो गये और उसके परिवारके लोग रोने लगे।

अन्तमें एक नागरने कहा—'भाइयो! एक उपाय है, उसे भी करके देख लेना चाहिये। आजकल नरसिंहराम जादूगर बना हुआ

है। कदाचित् उसके हाथसे सारंगधरजीका सर्पविष उतर जाय।' सब लोग सहमत हो गये और सारंगधरको भक्तराजके मन्दिरमें उठा लाये। जब भक्तराजसे सारा हाल कहा गया तो उन्होंने कहा—'भाइयो! मैं कोई तन्त्र-मन्त्र तो जानता नहीं। हाँ, भगवान्‌की कृपासे उनके चरणोदकसे कदाचित् मृत्युका भय दूर हो जाय।'

इतना कहकर भक्तराजने भगवान्‌का स्मरण किया और भगवान्‌का चरणामृत लेकर सारंगधरके मुँहपर मार्जन किया। भगवान्‌की कृपासे सारंगधरका विष उतर गया और वह सचेत होकर उठ बैठा। परन्तु वह सामने नरसिंहरामको देखते ही भीतर-ही-भीतर क्रोधसे जल उठा। वह वहाँसे उठकर चुपचाप घर चला आया।

इस प्रकार भक्तराजने द्वेषका बदला प्रेमसे देकर अपने विश्वप्रेमका आदर्श लोगोंके सामने प्रकट कर दिया।

भक्तराजकी कसौटी

कहते हैं सर्पको दूध पिलानेसे उसका विष ही बढ़ता है। यद्यपि भक्तराज नरसिंहरामने स्वाभाविक दयासे ही सारंगधरको जीवनदान किया था, फिर भी उसपर उसका उलटा ही प्रभाव पड़ा। उसने समझा नरसिंहराम जादूगर है और यह सब उसीकी दुष्टताका फल था, अतएव भक्तराजके प्रति उसके मनमें द्वेषाग्नि और भी अधिक भभक उठी!

जिस समयका यह प्रसंग चल रहा है, उस समय जूनागढ़के राज्यासनपर रावमाण्डलीक नामक क्षत्रिय राजा विराजमान था। सारंगधर भी राज्यके एक प्रतिष्ठित पदपर नियुक्त था। जब सारंगधर चंचलाद्वारा भक्तराजका मानभंग करनेमें समर्थ न हुआ तो उसने राजासे उनकी निन्दा करना शुरू कर दिया। परन्तु राजा उसकी बातपर विशेष ध्यान नहीं देता था।

किन्तु सारंगधर अपनी धुनका बड़ा पक्का था। भक्तराजको प्राणदण्ड या कारावास दिलाये बिना उसे चैन नहीं थी। राजाके ध्यान न देनेपर भी वह बराबर भक्तराजकी कोई-न-कोई शिकायत सुनाता ही रहा। अन्तमें एक दिन राजासे उसने यह भी कह दिया कि रात्रिमें भजनके बहाने नरसिंहराम अनाचारका प्रचार कर रहा है। ऐसे ढोंगीको दण्ड देना अत्यन्त आवश्यक है।

कहावत है कि बड़े लोगोंको कान होते हैं, नेत्र नहीं होते। नित्य शिकायत सुननेके कारण एक दिन राजाने भक्तराजको राजसभामें बुलानेकी आज्ञा दे ही दी और दूसरे दिन उनका न्याय करनेका निश्चय किया गया।

उसी दिन भक्तराज जब भगवान्‌की सेवा-पूजा समाप्त करके भगवन्नामका जप कर रहे थे, तब वहाँ एक वृद्ध ब्राह्मण आया।

ब्राह्मणको आसन, जलपानादि देकर उन्होंने विनयपूर्वक आगमनका कारण पूछा—

ब्राह्मणने उत्तर दिया—'भक्तराज! वृद्धावस्थाके कारण मैं द्रव्य कमानेमें अशक्त हो गया हूँ और इस कारण मेरी कन्याके विवाहयोग्या हो जानेपर भी मैं कन्यादान करनेमें असमर्थ हो रहा हूँ। यदि आप मुझे साठ रुपयेकी सहायता कर देंगे तो आपका बड़ा कल्याण होगा।'

भक्तराजने कहा—'महाराज! मेरे पास तो रुपया नहीं है। परन्तु थोड़ी देर आप यहाँ बैठिये; चेष्टा करता हूँ; यदि ईश्वरकी कृपा हुई तो आपका कार्य हो जायगा।'

नरसिंहराम ब्राह्मणको घरमें बैठाकर स्वयं बाजारमें गये और उन्होंने अपनी जान-पहचानके कई लोगोंसे साठ रुपये उधार माँगे। परन्तु इस तरह कोई रुपया देनेके लिये राजी नहीं हुआ। लोगोंको भय था कि यह फिर रुपया कैसे लौटा सकते हैं।

अन्तमें नरसिंहराम धरणीधर नामक एक नागरके घरपर आये। धरणीधर एक भक्त आदमी था और नरसिंहरामपर उसकी कुछ श्रद्धा भी थी। परन्तु था वह बड़ा स्पष्टवादी। जब नरसिंहरामने अपना सारा हाल उसे सुनाया तो उसने '**आहारे व्यवहारे च स्पष्टवक्ता सुखी भवेत्**' इस न्यायके अनुसार स्पष्ट ही कहा—'नरसिंहरामजी! वैसे तो मुझे आपको रुपया देनेमें कोई आपत्ति नहीं है; परन्तु रुपये-पैसेका मामला जरा टेढ़ा है। केवल जबानपर विश्वास रखनेकी अपेक्षा कोई वस्तु गिरों रख लेना उत्तम है। यदि आप कोई चीज ले आवें तो मैं अभी साठ रुपये दे सकता हूँ।'

भक्तराजने विचार किया मेरे पास कोई वस्तु गिरों रखने योग्य तो है ही नहीं। तो क्या अब ब्राह्मणका कार्य नहीं होगा?

एक क्षण सोचनेपर एक उपाय उन्हें सूझा। उन्होंने सोचा कि मेरे पास सबसे प्रिय वस्तु केदारराग है। भगवान्‌का आवाहन मैं इसी रागके द्वारा किया करता हूँ। इस रागके बिना मेरा कार्य एक क्षण भी नहीं चल सकता। अतएव यह राग मेरे लिये बहुमूल्य भी है। यदि इसे धरणीधर अपने पास रख लें तो ब्राह्मणके लिये मैं इसे भी गिरों रख सकता हूँ।

नरसिंहरामने यह सोचकर कहा—'धरणीधरजी! मेरे पास रेहन रखने योग्य कोई दूसरी वस्तु नहीं है। यदि आपको विश्वास हो तो मैं केदारराग आपके पास रख सकता हूँ। जबतक आपके रुपये चुका न दूँगा तबतक चाहे प्राण भी चले जायँ, मैं केदारराग नहीं गाऊँगा।'

धरणीधरको मालूम था कि केदारराग भक्तराजके लिये कितनी आवश्यक है। अतएव वह तैयार हो गया और भक्तराजने उसे इस आशयका प्रतिज्ञापत्र लिखकर दे दिया कि 'मैं भगवान्‌की साक्षी देकर कहता हूँ कि जबतक मैं धरणीधरजीको साठ रुपये चुका न दूँगा तबतक केदारराग नहीं गाऊँगा।'

इस प्रतिज्ञापत्रको लेकर धरणीधरने साठ रुपये भक्तराजको दे दिये, भक्तराज बड़ी प्रसन्नताके साथ रुपये लेकर आये और उन्होंने ब्राह्मणको सब रुपये समर्पित कर दिये। ब्राह्मण भक्तराजको हार्दिक आशीर्वाद देकर विदा हुआ। भक्तराज इस कसौटीपर भी खरे उतरे।

भक्तराज दरबारमें

दूसरे दिन रावमाण्डलीकके दरबारमें भक्तराज हाजिर हुए। सारंगधर, वंशीधर, अनन्तराय इत्यादि अपने ही कुटुम्बीजन नरसिंहरामका अपमान करनेके लिये इस तरह उतारू होकर दरबारमें बैठे थे, जिस तरह काठको काटनेके लिये काठका ही टुकड़ा कुल्हाड़ीका बेंट बना हुआ रहता है। भक्तराजको ज्ञानहीन ठहरानेके लिये सारंगधर अपने साथ शहरके दो-चार संन्यासियोंको रुपयोंका लालच देकर ले आया था। जब सब लोग आकर यथास्थान बैठ गये तब राजाने सारंगधरकी मण्डलीकी ओर देखते हुए कहा—'कहिये, आपलोगोंका क्या कहना है?'

'राजन्! यह नरसिंहराम इस शहरमें रहकर अनेक प्रकारके ढोंग रचकर जनताको भ्रममें डाल रहा है; भक्तिका झूठा बहाना बनाकर अनेक प्रकारके अनाचारोंका पोषण कर रहा है और स्वयं अज्ञानी होनेपर भी अन्य मनुष्योंको ज्ञान देनेका निन्दित एवं धर्मशास्त्रविरुद्ध कार्य कर रहा है। अत: राजाका धर्म है कि ऐसे अधर्मकी वृद्धि करनेवाले मनुष्यको उचित दण्ड देकर अधर्मसे देशकी रक्षा करे।' सारंगधरने अपनी शिकायत पेश की।

'सारंगधरजी! मैं बहुत दिनोंसे भक्तराजकी कीर्ति सुन रहा हूँ। वह भगवान् कृष्णके प्यारे भक्त हैं। जन्मोंसे लेकर आज-पर्यन्त उनके ऊपर किसी प्रकारका कलंक आया हो, ऐसा सुना नहीं है। फिर आज वृद्धावस्थामें उनके अन्दर कोई कुप्रवृत्ति पैदा हो, जैसा कि आप कहते हैं असम्भव है। ऐसे वीतराग महात्मा भगवद्‌भक्तिके द्वारा संसारको सच्चे मार्गपर ला देते

हैं, उनका आचरण ही धर्मशास्त्र बन जाता है। आखिर आपका धर्मशास्त्र क्या है? ऐसे ही महानुभावोंका अनुभव, उपदेश और जीवन-प्रणाली ही तो है। अतः इनका आचरण कभी धर्मशास्त्रविरुद्ध नहीं हो सकता। अब रही उनके अनाचारकी बात। सो इस विषयमें जबतक कोई विश्वसनीय गवाही नहीं मिल जाती, तबतक उनको दुराचारी कहना पाप है।' राजाने कहा।

इसी समय अनन्तरायने बोलना शुरू किया—'राजन्! आपने जो कुछ व्याख्या सुनायी वह अनन्य भक्तोंके लिये बिलकुल यथार्थ है। यह नरसिंहराम तो मेरा भानजा ही है; परन्तु यह कहते हुए मुझे तनिक भी संकोच नहीं होता कि यह वास्तवमें भजनके बहाने अनाचार ही बढ़ाता है। इस विषयमें मेरा एक प्रत्यक्ष अनुभव है, सो मैं निवेदन करता हूँ।

मेरी स्त्री भी नित्य इसके भजनमें शामिल होती थी। वह नित्य आधी रातको भजनके बीचमें इसे जल पिलाया करती थी। इस बातको सारंगधरजीने मुझसे कई बार कहा, परन्तु मैं इसे नहीं मानता था। एक दिन जब मैंने स्वयं उसे पानी पिलाते देखा तो दूसरे दिन उसे भजनमें जानेसे मना कर दिया। परन्तु उसने मेरी बात नहीं मानी और उस दिन भी चली गयी। फिर रंज होकर दूसरे दिन मैंने उसे बाँधकर कमरेमें बन्द कर दिया और ताला लगाकर चाभी अपने पास रख ली। मैंने सुना था कि भजनके बीचमें यह दूसरेके हाथका जल नहीं पीता। इसलिये कौतूहलवश मैं उस रात इसके घर यह देखने गया कि आज इसकी टेक कैसे रहती है। परन्तु भजनके बीचमें विश्रामके समय देखा कि वही मेरी स्त्री इसको

अपने हाथसे पानी पिला रही है।* यह दृश्य देखते ही मुझे बड़ा क्रोध हुआ कि उसे किसने निकाल दिया। मैं उसी क्षण घर गया। परन्तु वहाँ जाकर देखता हूँ कि ताला भी बन्द है और वह उसी तरह बन्दी अवस्थामें राधाकृष्णके नामकी धुन लगाती हुई पड़ी है, तब तो बड़ा आश्चर्य हुआ! कुछ समझमें ही नहीं आया कि मामला क्या है। अन्तमें मैं इस निश्चयपर आया कि इसी प्रकार नरसिंहराम जादूके बलपर अनेक स्त्रियोंको अपनी ओर आकर्षित करता है और फिर उनके साथ स्वेच्छा-विहार करता है। यदि आपको विश्वास न हो तो आप स्वयं शहरमें चलकर चंचला वेश्याको देख आइये। उसने भी इसीके फन्देमें फँसकर विचित्र वेष धारण कर लिया है और नित्य वह भी इसके यहाँ जाया करती है। यह बात शहरके तमाम लोग जानते हैं। राजन्! क्या कोई मनुष्य रात्रिके समय एकान्तमें किसी वेश्याके साथ रहकर पवित्र रह सकता है? भला काजरकी कोठरीमें श्वेत वस्त्र पहनकर रहनेवाला कभी उसके दागसे बच सकता है? आप स्वयं ही विचार करें कि हमलोगोंका अभियोग ठीक है या नहीं।'

अनन्तरायके सप्रमाण वक्तव्यको सुनकर राजा बड़े विचारमें पड़ गये। उन्होंने सोचा कि चंचला वेश्याकी बात तो सर्वविदित है ही कि वह भक्तराजके पास जाया करती है, फिर अनन्तराय ईश्वरकी शपथ लेकर स्वयं अपना अनुभव कह रहे हैं; अपने घरके विषयमें एक प्रतिष्ठित आदमी कभी झूठी बात नहीं कह सकता। फिर इस विषयमें निर्णय कैसे किया जाय?

---

* कहते हैं, अनन्तरायकी स्त्रीके बन्दी होनेपर उस दिन स्वयं भगवान्‌ने उसका रूप धारण करके भक्तराजको जल पिलाया था। इसका रहस्य न समझनेके कारण सारंगधर और अनन्तरायने भक्तराजको अनाचारी मान लिया था।

अच्छा, जरा नरसिंहरामसे भी पूछा जाय, देखें वह इन बातोंका क्या उत्तर देते हैं। दोनों पक्षकी बात पहले सुन लेना आवश्यक है। इस प्रकार सोचकर उन्होंने भक्तराजकी ओर देखा और कहा—'भक्तराज! इस विषयमें आप क्या कहना चाहते हैं?'

'राजन्! अनन्तरायका कथन सब यथार्थ ही है। परन्तु किसी मनुष्यसे भजनमें आनेके लिये न तो मैं आग्रह करता हूँ और न किसीके लिये प्रतिबन्ध लगाता हूँ। मेरे घर आकर भगवद्भजन करनेका अधिकार आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सबको समान है। इस विषयमें मैं अपनेको दोषी नहीं समझता। मैं अपने राधेश्यामके नामके सिवा और कुछ भी नहीं जानता। मैं तो अपने पास आकर भजन करनेवालोंका प्रतिरोध करके उनका जी दुखाना स्वयं भगवान्‌के प्रति दोष करनेके बराबर समझता हूँ। फिर आप राजा हैं; आपमें भी परमात्माका अंश वर्तमान है; आप स्वयं विचारकर देख सकते हैं कि मैं इस विषयमें दोषी हूँ या निर्दोष। यदि आपको मेरा दोष जान पड़े तो आप मुझे उचित दण्ड दे सकते हैं।' भक्तराजने सरलतापूर्वक निवेदन किया।

महात्माओंका हृदय अत्यन्त कोमल और दयालु होता है। वे स्वयं आपत्तिमें पड़ जानेपर भी अपने मुँहसे अपराधी मनुष्योंको भी अपराधी नहीं कहते। भक्तराज जानते थे कि इन लोगोंने ईर्ष्यावश ही सब काण्ड रचा है, तथापि उन लोगोंको दोषी ठहराना भक्तराजके लिये पाप ही था।

भक्तराजका कथन सारंगधरसे नहीं सहा गया। वह तुरन्त अपने आसनसे उठकर कहने लगा—'नरसिंहराम! तुम बहुत अनर्थ कर रहे हो। तुम्हें शास्त्रज्ञान तो बिलकुल नहीं और

बन बैठे हो उपदेशक। यदि तुम अपनेको उपदेश देनेका अधिकारी समझते हो तो इन संन्यासियोंके साथ शास्त्रार्थ करो और इस सभामें अपनी सर्वज्ञता सिद्ध करो।'

"भाई! न तो मैं शास्त्रज्ञ हूँ और न सर्वज्ञ। परमात्माके सिवा इस जगत्में कोई भी सर्वज्ञ होनेका दावा नहीं कर सकता। अतएव मैं शास्त्रार्थ या वेदार्थ कुछ भी करनेमें असमर्थ हूँ।" कहा है—

काम क्रोध मद मोहको, जब लगि घटमें स्थान।
क्या पण्डित क्या मूरखा, दोनों एक समान॥

शास्त्रोंको पढ़कर वाद-विवाद तथा काम-क्रोधादिके वशीभूत होकर उन शास्त्रोंका दुरुपयोग करनेवालेको पण्डित कहनेवाला भी मूर्ख है। अतः मुझे तो पहलेसे ही पण्डित बनना नापसन्द है। मैं तो केवल आत्मचिन्तन और भगवान्‌का नाम ही जानता हूँ। भगवत्-चिन्तनके द्वारा जबतक आत्माकी पहचान नहीं होती, तबतक यज्ञ, तप और व्रत आदि साधन भी उपयुक्त फल नहीं देते। सुनिये—

प्रभाती

ज्यां लगी आतमा तत्त्व चिन्यो नहीं, त्यां लगी सर्व झूठी।
मानुष देह तारो, एम एल गयो, मावठांनी जेम वृष्टि बूठी॥ १॥
शुं थयुं स्नान सेवा ने पूजाथकी, शुं थयुं घेर रहि दान दीधे।
शुं थयुं धरि जटा भस्म लेपन कर्ये, शुं थयुं लाललोचन कीधे॥ २॥
शुं थयुं तप ने तीरथ कीधाथकी, शुं थयुं माल ग्रहो नाम लीधे।
शुं थयुं तिलक ने तुलसी धार्याथकी, शुं थयुं गंगजल पान कीधे॥ ३॥
शुं थयुं वेद व्याकरण वाणी वदे, शुं थयुं राय ने रंक जाणे।
शुं थयुं देवदर्शन सेवाथकी, शुं थयुं वरणना भेद आणे॥ ४॥
ए छे परपंच सहु, पेट भरवातणा, आत्म परब्रह्म जेणे न जोयो।
भणे नरसैंयो के तत्त्वदर्शन बिना, रत्न चिन्तामणि जन्म खोयो॥ ५॥

अर्थात् 'हे मन! जबतक तुम आत्मतत्त्वको पूर्णरूपसे नहीं जान लेते तबतक सभी साधन झूठे हैं। तुम्हारा मनुष्य-तन भी शरद्-ऋतुकी वर्षाके समान व्यर्थ ही चला गया।

'स्नान, सेवा-पूजा, दान करने तथा भस्म लगाकर नेत्रोंको रक्तवर्ण बनानेसे क्या लाभ? और तप, तीर्थसेवन, जप, तिलकमाला धारण करने एवं गंगाजलपान करनेसे ही क्या हुआ? वेद, व्याकरण और वाणी बोलने, राजा और रंकको पहचानने, देवदर्शन और पूजा करने तथा वर्ण-भेद समझनेसे क्या हुआ?

'ये सब केवल पेट भरनेके प्रपंच हैं। इन साधनोंके द्वारा परब्रह्मस्वरूप आत्माका चिन्तन नहीं हो सकता। इसलिये नरसिंह कहता है कि आत्मदर्शन किये बिना तुमने इस चिन्तामणिके समान मनुष्य-तनको भी व्यर्थ ही गवाँ दिया।'

"अत: भाई! इस व्यर्थके झमेलेमें कौन पड़े? शास्त्रार्थ उन्हीं लोगोंको मुबारक हो जिन्हें अपनी पेटकी पड़ी है। मुझे तो रोटीका टुकड़ा मिल गया तो भी ठीक और न मिला तो भी ठीक।" इस प्रकार भक्तराजने पण्डित-अपण्डितका विवेचन किया और आत्म-चिन्तनका महत्त्व बतलाया।

भक्तराजके इस निर्भीक विवेचनको सुनकर उपस्थित सब लोग अवाक् हो गये। राजाने विचार किया कि पूर्णरूपसे परीक्षा किये बिना भक्तराजको दोषी या निर्दोष कुछ भी कहना न्यायविरुद्ध है। तब ऐसा कोई उपाय करना चाहिये जिसमें निरपराधी मनुष्यको दण्ड भी न मिले और अन्य पक्षको भी पूर्ण सन्तोष हो जाय। इस प्रकार विचार करते-करते सहसा उन्हें एक मार्ग सूझ पड़ा। उन्होंने एक फूलोंका हार मँगाया और उसे हाथमें लेकर कहा—'भक्तराज! यद्यपि आपका कथन एकदम सत्य है, फिर भी आपके विरुद्ध

इन लोगोंकी गवाहियाँ होनेके कारण सत्य-असत्यका निर्णय करना कठिन हो गया है। अत: मैंने एक उपाय सोचा है जिसमें न्याय भी ठीक-ठीक हो जाय और दोनों पक्षोंसे किसीको कोई शिकायत करनेका भी मौका न मिले। आप यह पुष्पहार अपने हाथमें लीजिये और राजमन्दिरमें चलकर भगवान् राधा-दामोदरके कण्ठमें समर्पित कर दीजिये। मैं स्वयं मन्दिरका ताला बन्द करके चाभी अपने पास रखूँगा, यदि कल प्रात:काल होनेके पहले स्वयं भगवान् प्रकट होकर यही हार आपके गलेमें डाल देंगे तो आपकी निर्दोषता सिद्ध हो जायगी और यदि ऐसा न होगा तो फिर आपको उचित दण्ड दिया जायगा।'

राजाका यह अन्तिम फैसला सुनकर भक्तराजने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'न्यायप्रिय नीतिज्ञ राजन्! भगवान् भक्तवत्सल हैं। यदि मेरी सच्ची निष्काम भक्ति उनमें होगी तो वह अवश्य अपने कण्ठका हार मुझे दे देंगे; और यदि ऐसा न भी हुआ तो भी क्या? मेरे लिये राजमहल और कारागृह समान है। मुझे तो भगवत्कीर्तन करनेके लिये कोई भी एक स्थान मिलना चाहिये, इतना ही मेरे लिये बस है।'

भक्तराजने राजाके हाथसे पुष्पहार ले लिया। उन्होंने राजमहलके मन्दिरमें जाकर भगवान् राधा-दामोदरके कण्ठमें हार डाल दिया और भक्तिपूर्वक प्रणाम करके बाहर निकल आये। राजाने मन्दिरके तालेको बड़ी सावधानीसे बन्द करके चाभी अपने पास रख ली।

सारंगधरने अपना अधिकार प्रदर्शित करते हुए कहा—'नरसिंहराम! यदि इस न्यायमें तू असफल रहा तो राजाकी तलवारसे तेरा सिर धड़से अलग कर दिया जायगा।'

'भाई! राजाके हाथसे, भगवान्‌के मन्दिरमें और मेरे नाथके सामने यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो इससे बढ़कर और क्या सौभाग्यकी बात होगी? फिर मेरे आत्माको तो स्वयं यमराज भी नष्ट नहीं कर सकते और इस नाशवान् देहके नष्ट होनेका मुझे किसी प्रकारका दुःख नहीं है, क्योंकि सत्यके लिये किया गया देहत्याग मुझे अमर बना देगा।' भक्तराजने दृढ़ताके साथ कहा।

इतना कहकर भक्तराज मन्दिरके चौकेमें बैठ गये और भजन करने लगे। अन्य पक्षवालोंके साथ स्वयं राजा भी वहाँ भक्तराजका न्याय करनेके लिये बैठ गये।

हार-प्रदान

किसी मनुष्यका जमा किया हुआ द्रव्य समय पाकर नष्ट हो जाता है; विद्या, यौवन और जीवन भी चंचल होनेके कारण काल-कर्मके अधीन होकर नष्ट हो जाते हैं। परन्तु भगवान्‌का भजन कालान्तरमें भी नष्ट नहीं होता। उसका फल यदि इस जन्ममें न भी मिले तो जन्मान्तरमें चक्रवृद्धि व्याजके साथ मिलता है; परन्तु मिलता जरूर है, बेकार नहीं जाता। भक्तराज इसी विश्वासको हृदयमें रखकर भगवान्‌का भजन कर रहे थे। परन्तु यह बात रह-रहकर उनके हृदयमें खटक रही थी कि मेरा प्रिय राग केदार तो साठ रुपयोंमें बन्धक पड़ा हुआ है। उसके बिना भगवान्‌का आवाहन कैसे करूँगा? उन्होंने भगवान्‌का ध्यान करनेकी बहुत चेष्टा की, परन्तु इस बातके लिये उनका चित्त विह्वल हो उठता था।

× × × ×

दिव्य वैकुण्ठधाममें भगवान् श्रीकृष्ण सो रहे थे और जगन्माता श्रीलक्ष्मीजी पादसेवन कर रही थीं। आधी रातके समय भगवान् एकाएक जाग उठे और मानो कहीं जानेकी तैयारी करने लगे। इस प्रकार सहसा उन्हें तैयार होते देख श्रीलक्ष्मीजीसहित समस्त पार्षदोंको बड़ा आश्चर्य हुआ।

श्रीलक्ष्मीजीने हँसते हुए प्रश्न किया—'प्राणेश! आज अचानक आपकी निद्रा कैसे भंग हो गयी? क्या किसी दुर्धर्ष दैत्यका वध करनेके लिये आप इस समय उद्यत हो रहे हैं? अथवा किसी पशु भक्त गजेन्द्रका उद्धार करना है?'

'प्रिये! तुमलोग इस रहस्यको क्या समझोगी? मेरी शरणमें आये हुए समस्त जीव मुझे एक समान प्रिय हैं, चाहे वे

पशुयोनिमें हों या देवयोनिमें। परन्तु आज तो मैं एक अपने परमप्रिय भक्तको सहायता देनेके लिये जा रहा हूँ; उस निरपराधी भक्तराजको···।' इतना कहते-कहते बात अधूरी ही छोड़कर भगवान् अत्यन्त शीघ्रतासे चल पड़े। भक्तवत्सल भगवान्ने आज साथमें गरुड़ या किसी पार्षदको भी लेनेकी आवश्यकता नहीं समझी। भक्तराजके दुःखी हृदयकी पुकार सुनकर उनके हृदयमें भी व्यथा हो रही थी। उन्होंने तुरन्त जूनागढ़ आकर भक्तराजका-सा स्वरूप धारण किया और धरणीधर मेहताके घरपर पहुँचकर उसका दरवाजा खटखटाना आरम्भ किया।

'कौन है?' सोये-सोये धरणीधरने प्रश्न किया।

'द्वार खोलिये। मैं नरसिंहराम हूँ। ऋणमुक्त होनेके लिये आया हूँ।' भक्तराजरूप भगवान्ने कहा।

भक्तराजकी आवाज सुनकर धरणीधरकी स्त्रीने द्वार खोल दिये। भक्तराजस्वरूप भगवान्के सामने आनेपर धरणीधरने नमस्कार किया और कहा—'भक्तराज! इतनी कौन-सी जल्दी थी कि आपने इस समय कष्ट किया? अगर कुछ दिन रुपया रह भी जाता तो कोई हर्ज नहीं था।'

'भाई! यह तो ठीक ही है। परन्तु जब एक उदार गृहस्थसे रुपये मिल गये तब उन्हें घरपर रखनेसे लाभ ही क्या? फिर इसी समय मुझे केदारराग गानेकी भी बड़ी देर हो रही है; इसीसे विचार किया कि अभी चलकर रुपये दे दूँ और रागको छुड़ा लाऊँ।' नरसिंहरामरूप भगवान्ने उत्तर दिया।

भगवान्ने इतना कहकर धरणीधरके सामने साठ रुपये रख दिये। धरणीधरने रुपये गिनकर रख लिये और नरसिंहरामके प्रतिज्ञापत्रपर भरपाई लिखकर उसे भगवान्को दे दिया। प्रतिज्ञापत्र लेकर भगवान् राजमहलके मन्दिरमें आये जहाँ व्यथितहृदय

भक्तराज एकाग्रचित्तसे भगवद्भजन और ध्यान कर रहे थे। भगवान्ने अन्तरिक्षसे उस पत्रको भक्तराजके सामने गिरा दिया। परन्तु इस बातको भक्तराजके अतिरिक्त और किसीने नहीं देखा। भक्तराजने पत्र सामने गिरते देख कौतूहलवश उसे उठा लिया। उन्होंने जब यह देखा कि यह तो मेरा ही प्रतिज्ञापत्र है तब तो उन्हें बड़ा विस्मय हुआ; फिर उन्होंने उसपरके नवीन अक्षरोंको पढ़ा। उसमें लिखा था—'आज आधी रातको जगाकर नरसिंहरामजीने मेरे पूरे साठ रुपये चुका दिये। अतएव मैंने भरपाई लिख दी; अब वह केदारराग प्रेमसे गा सकते हैं।—धरणीधर राय।'

पत्र पढ़ते-पढ़ते भक्तराजके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलक पड़े, कण्ठ भर आया, शरीरमें रोमांच हो आया। उन्होंने सोचा, यह कार्य भी भगवान्का ही किया हुआ है। वह प्रेममें उन्मत्त होकर नाचने लगे। उनकी इस स्थितिको देखकर वहाँपर उपस्थित लोग नाना प्रकारकी कल्पनाएँ अपने मनमें करने लगे। अनन्तरायने कहा—'देखो, अब पोल खुल जानेके भयसे यह पागल बननेका दम्भ कर रहा है।' सारंगधरने कहा—'प्रात:काल होते ही राजाकी तलवारसे अपने-आप उसका पागलपन दूर हो जायगा।'

परन्तु भक्तराजको इन सब बातोंसे क्या प्रयोजन था? उनके दिलमें तो अनायास प्रतिज्ञापत्र प्राप्त हो जानेसे भगवान्के प्रति अनन्य प्रेम उमड़ पड़ा था। 'भगवान्के हृदयमें मेरे-जैसे क्षुद्र जीवके लिये भी स्थान है' इस विचारने उन्हें पागल बना रखा था और वह बेसुध होकर प्रेमावेशमें नृत्य कर रहे थे। उन्हें यह भी स्मरण नहीं था कि अब प्रात:कालमें कुछ क्षण ही शेष रह गये।

'भक्तराज! पागलपन दिखाते-दिखाते तो सबेरा हो आया। अब इस अन्तिम मुहूर्तमें यदि आपके कण्ठमें हार नहीं पड़ा तो

यह नृत्य आपकी रक्षा नहीं कर सकता। इन फालतू बातोंमें क्या रखा है, शीघ्र शर्त पूरी कीजिये।' राजा माण्डलीकने भक्तराजको सचेत करते हुए कहा।

राजाकी सत्तासूचक आवाज सुनकर भक्तराज प्रेम-समाधिसे जाग उठे। उस समय पूर्वदिशामें अरुणोदय होने ही जा रहा था। पक्षिगण जाग्रत् होकर अपने कलरवसे सूर्यभगवान्का आवाहन कर रहे थे। भक्तोंके हृदयस्थित नटखट नटवरकी मनोरम मूर्ति मन्द-मन्द हँस रही थी।

भक्तराजने मनमें विचार किया कि राजाका कथन ठीक ही है। मैं तो भगवान्के विश्वासपर बैठा हुआ हूँ, परन्तु न मालूम वह क्या विचार कर रहे हैं। क्या इस समयतक वे निद्रामें ही मग्न पड़े होंगे? या इस प्रेमयज्ञमें वह मेरा बलिदान लेना चाहते हैं? इस प्रकार विचार करते-करते उनके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चलने लगा। उन्होंने अपनी करताल सँभाली और केदाररागमें प्रेमपूर्ण भजन गाना शुरू कर दिया। उस भजनका भाव इस प्रकार था—

'दयालु देव! क्या आपकी प्रीतिका यही फल मिलेगा? परंतु मेरा तो निश्चय है कि मेरी गर्दनकी अपेक्षा आपकी लाजका मूल्य कहीं अधिक है। भगवन्! शास्त्र-पुराणोंमें आपकी महान् उदारता दिखाते हुए कहा गया है कि आपने एक मुट्ठी तन्दुलके बदले सुदामाको कंचन-महल बनवा दिया था; एक धागेके बदले द्रौपदीको ९९९ चीर प्रदान करके उसकी लाज बचायी थी; कुब्जाका चन्दन ग्रहण करके उसे अनुपम सुन्दरी बना दिया था और गोप-बालकोंका गोवर्धनयाग स्वीकार करके उनकी रक्षाके निमित्त सात दिन पर्यन्त अपनी कनिष्ठिका अँगुलीपर गोवर्धनगिरि उठानेका कष्ट उठाया था। तो क्या मेरी बार इस पुष्पहारके लिये ही आप कृपण बन जायँगे?

'परमात्मन्! राजाका कहना ठीक ही है; शर्त पूरी होनेसे काम चलेगा; अन्यथा इस कार्यमें यदि आप विलम्ब करेंगे तो माण्डलीकके खड्गसे मेरी मृत्यु हो जायगी। परंतु नाथ! मैं मृत्युसे डरकर विनय नहीं कर रहा हूँ। मैं डरता हूँ आपकी अपकीर्तिसे। यदि शर्त पूरी न हुई तो पीछे संसार आपके नामपर हँसते हुए कहेगा—नरसिंहरामकी टेकका फल अच्छा मिला!

'किंतु मदनमोहन! मैं भूल रहा हूँ। यह तो मैं अपने कर्मोंका फल भोग रहा हूँ। इसमें आपका बिलकुल दोष नहीं है। परंतु फिर भी नाथ! आपके सिवा दूसरे किसको पुकारूँ? अवश्य ही मेरे-जैसे आपके बहुत सेवक हैं; किंतु नरसिंहरामके तो एक आप ही पति हैं। प्राण भले ही चले जायँ, भला वह अन्य पतिको कैसे खोज सकता है? मेरे प्राणोंकी रक्षा आप करें या न करें, मैं तो आपके अतिरिक्त अन्य किसी पतिकी सेवा स्वीकार नहीं कर सकता और ऐसा निर्लज्ज पति भी कौन होगा जो अपने प्रियजनको अन्य पतिके साथ रमण करते हुए देख सके?

'दयालु दामोदर! जैसा भी है यह नरसिंहराम आपका ही है। उसे चाहे जिलाइये या मार डालिये।'

बस, भला भक्तवत्सल भगवान् इससे अधिक प्रेमोपालम्भ कैसे सहन कर सकते थे? उन परीक्षकने अब अधिक परीक्षा लेना उचित नहीं समझा। उधर क्षितिजमें ज्यों ही भगवान् भुवनभास्करने अपने वरेण्य भर्गकी सबसे पहली झाँकी दिखायी, त्यों ही इधर राजभवनके मन्दिरके द्वारकी लोहेकी मजबूत जंजीर और ताला धड़ाधड़ टूटकर जमीनपर गिर पड़ा, फाटक अपने-आप खुल गया और एक दिव्य ज्योति मन्दिरसे निकलकर भक्तराजकी ओर चलने लगी। वहाँ उपस्थित सब लोग आश्चर्यके मारे आँखें फाड़-फाड़कर यह अलौकिक दृश्य देखने लगे!

भक्तराजके पास पहुँचनेपर उस आलोकमण्डलके अन्दर भगवान् मुरलीमनोहरका द्युतिमय स्वरूप दिखायी पड़ा और भगवान्‌ने सबके देखते-देखते अपने कण्ठका हार उतारकर भक्तराजके गलेमें पहना दिया। हार गलेमें पड़ते ही भक्तराज उच्चस्वरसे बोल उठे—'बोलो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय!'

भक्त और भगवान्

भक्तके सामने भगवान्के प्रकट होनेपर भक्तकी क्या दशा होती है इसका वर्णन कौन कर सकता है? भक्तराज अपने नेत्रोंसे उन साँवरे सलोनेके दिव्य रूपरसका पान करने लगे। जब उससे भी तृप्ति न हुई तो भगवान्के चरणकमलोंमें लिपट गये।

भगवान्ने हँसते हुए प्रेमभरे स्वरमें कहा—'नरसिंहराम! आज मैंने विनोदवश तुमको बहुत अधिक दुःख दे दिया।'

'क्षमा कीजिये कृपानिधान! आपकी मायाके वशीभूत होकर अब अधिक मैं इस असार-संसारमें नहीं रहना चाहता। प्रभो! इस संसारमें तो दगाबाज, कुटिल, अन्यायी और नास्तिक लोगोंको ही स्थान देना उचित है। जिस प्रकार शकटके नीचे चलनेवाला कुत्ता शकटका सारा भार अपने ही ऊपर समझकर उसके नीचे-नीचे चलता रहता है, उसी प्रकार यहाँ समस्त प्राणी अपने अभिमानके वश संसारका सारा बोझ अपने ऊपर समझकर नाना प्रकारके दुःख भोगा करते हैं। मैं तो इस झूठे संसारसे ऊब गया हूँ। मुझे इस अयोग्य संसारसे कोई प्रयोजन नहीं। मैं तो आपके चरणोंके अतिरिक्त ब्रह्मपदको भी नहीं चाहता।' गद्‌गद होकर भक्तराजने प्रार्थना की।

'भक्तराज! प्रेममग्न होकर इस सरस संसारको दोष देना उचित नहीं। पूर्वकालमें भक्त बालक प्रह्लाद, तपस्वी बालक ध्रुव, राजा अम्बरीष, महात्मा विदुर, भक्तिमती गोपांगनाएँ आदि सभी भक्तोंने इसी संसारमें रहकर मुझे प्राप्त किया

था। वत्स! मुझको प्राप्त करनेके लिये अरण्यनिवास, तीव्र तपश्चर्या आदिकी कोई खास आवश्यकता नहीं है। महाभारतमें कहा गया है—

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां
गृहेऽपि पंचेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्॥

इससे यह सिद्ध होता है कि 'वनमें निवास करनेवाले, काम-क्रोधादि षट् विकारोंमें फँसे हुए वैरागियोंसे संसारमें रहकर गृहस्थधर्मानुसार जीवन बितानेवाला रागी कहीं अधिक उत्तम है। फिर संसारको त्यागकर जो भक्त मुझे प्रसन्न करता है, उसकी अपेक्षा संसारमें रहकर मुझसे प्रेम करनेवाला भक्त मुझे अधिक प्रिय है। अतएव इससे भागनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये।' भगवान्‌ने संसारकी महत्ता बतलाते हुए कहा।

'परंतु भगवन्! मैं तो संसारमें रहकर भक्ति करनेपर भी आपको सदा ही अपने सांसारिक कार्योंके लिये कष्ट देता रहा और इस तरह दोषभागी बनता रहा। इस बातका मुझे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है।' भक्तराजने निवेदन किया।

'परंतु वत्स! मैंने तुम्हारा कौन-सा दुष्कर कार्य कर दिया है? इन छोटे-मोटे कार्योंको करके भला तुम्हारी भक्तिका बदला दिया जा सकता है? तुमने तो अपना तन, मन, धन—प्रत्युत अपना सर्वस्व मेरे लिये न्योछावर करके मेरा भजन किया है। प्राण जानेका मौका आ जानेपर भी तुमने मेरे भजनसे विचलित होना पसन्द नहीं किया। इसके

बदले मैंने किया ही क्या? अपने पुत्रका विवाह, पिताका श्राद्ध, पुत्रीका दहेज और एक पैसेकी तुच्छ माला—क्या इसीके लिये तुम ऐसा कह रहे हो? ये कार्य तो एक साधारण-सा धनिक भी कर सकता था। भक्तराज! इन तुच्छ कार्योंको सम्पन्न करके मैं तुम्हारी बहुमूल्य भक्तिके एक शतांशका भी बदला नहीं चुका सकता। क्या करूँ, मुझे अपने भक्तोंका कर्जदार बने रहनेमें ही सन्तोष मिलता है। भक्तिका बदला चुकाकर मैं उसका महत्त्व नहीं घटाना चाहता।' भगवान्ने उदारतापूर्वक कहा।

'परंतु महाराज! ऐसा समय कब आवेगा जब कि मैं आपके चरणोंकी रज नित्य धारण किया करूँगा।' भक्तराजने अधीर होकर पूछा।

'वत्स! मैंने तुम्हें यह मनुष्यदेह भी तुम्हारी इच्छाके अनुसार ही दी है। शायद मेरी मायाका आवरण पड़ जानेसे तुम वह बात भूल गये हो। मैं तुम्हें स्मरण करा रहा हूँ। तुम पूर्वजन्ममें भीषण देवासुर-संग्राममें विजय-माल धारण करनेवाले मान्धातापुत्र मुचुकुन्द नामक राजा थे। इसी गिरनार-प्रदेशान्तर्गत मुचुकुन्द-गुहा* में कालयवनके बहाने मैंने तुम्हें दर्शन दिया था। मेरे प्रसन्न होनेपर यदि तुमने मोक्ष माँगा होता तो तुम इस आपत्तिमें हरगिज न पड़ते। परंतु मेरे हठीले भक्त तो मोक्षको तुच्छ ही समझते हैं, इसीसे तुमने कहा—

न कामयेऽन्यं तव पादसेवना-
दकिंचनप्रार्थ्यतमाद् वरं विभो।

* मुचुकुन्दगुहा आज भी गिरनार-प्रदेशान्तर्गत दामोदर-कुण्डके पास विद्यमान है। यह स्थान बड़ा ही रम्य और एकान्तवास एवं तपश्चर्याके योग्य है।

आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे
वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ५१। ५६)

अर्थात् 'हे विभो! अकिंचनोंके परम प्रार्थनीय आपके चरणोंकी सेवासे भिन्न किसी और वस्तुकी मैं इच्छा नहीं करता। हे हरे! मोक्ष देनेवाले आपकी आराधना करके कौन सत्पुरुष अपने लिये बन्धनरूप वर माँगेगा?'

फिर मैं तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध कैसे वरदान दे सकता था? मैंने भी—

क्षात्रधर्मस्थितो जन्तून् न्यवधीर्मृगयादिभिः।
समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः॥ ६३॥
जन्मन्यनन्तरे राजन् सर्वभूतसुहृत्तमः।
भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम्॥ ६४॥

अर्थात् 'क्षत्रियधर्ममें स्थित रहकर तुमने मृगया आदिके द्वारा अनेकों जीवोंका वध किया है, इसलिये अब समाधिनिष्ठ और मेरे आश्रित हो उस पापका नाश करो। हे राजन्! अगले जन्ममें तुम सब भूतोंके हितकारी ब्राह्मण-श्रेष्ठ होकर एकमात्र मुझे प्राप्त होओगे।'

उस क्षात्रधर्ममें रहकर किये हुए पापोंको तपश्चर्यासे नष्ट कराकर मैंने तुम्हें इस उत्तम नागरकुलमें जन्म दिया।

'भक्तराज! अभी इस संसारमें तुम पाँच वर्षपर्यन्त और रहकर जगत्में मेरी भक्तिका प्रचार करनेका कार्य करो। आजसे कोई आपत्ति तुम्हारे ऊपर नहीं आयेगी। तुम्हारे इस जन्मके मेरे इस अन्तिम दर्शनसे तुम्हारे ऊपर सरस्वती देवीकी कृपा हो जायगी। जबतक तुम्हारे इस पांचभौतिक शरीरका अन्त नहीं हो जाता तबतक तुम स्वानुभवके

आधारपर भक्तिपूर्ण पदोंकी रचना करो। यही मेरी सेवा है।' इस प्रकार समझाते हुए भगवान्ने अन्तिम आदेश सुना दिया।

भक्तराजने भगवदादेश शिरोधार्य किया और उनके चरणोंमें पुनः लोट गये। वह कबतक इस प्रकार पड़े रहे; इसकी उन्हें सुधि न रही। जिस समय स्वयं राजाने उन्हें जगाया उस समय श्यामसुन्दरका तेजोमय स्वरूप अदृश्य हो गया था। भक्त और भगवान्के वार्तालापकी ध्वनिसे वहाँका आकाश गूँज रहा था।

अन्तिम अवस्था

भगवान्‌के दर्शनसे सारंगधर, वंशीधर तथा अनन्तराय आदि सभी विपक्षियोंके हृदयसे अज्ञानका नाश हो गया और उनके अन्दर भक्तिभावका प्रादुर्भाव हो गया। उन्होंने भक्तराजके साथ जो द्रोह किया था, उसके लिये उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने बड़ी नम्रताके साथ भक्तराजसे निवेदन किया—'नरसिंहरामजी! आप-जैसे भगवान्‌के प्यारे भक्तको व्यर्थ कलंकित करनेका जो हमलोगोंने प्रयत्न किया, उसके लिये हमलोग अत्यन्त लज्जित हो रहे हैं। आपको दु:खी बनानेके महान् अपराधके कारण हमलोगोंको नरकमें भी स्थान मिलना कठिन है। आप कृपा करके हमारे अपराधोंको क्षमा कीजिये।'

भक्तराजने सरलतापूर्वक कहा—'भाइयो! सच्चे पश्चात्तापपूर्वक भजन करनेसे पूर्वोपार्जित संचित-प्रारब्ध, समस्त पापोंका नाश हो जाता है। आजसे आपलोग भी पापकर्मोंसे दूर रहते हुए प्रीतिपूर्वक भगवद्भजन कीजिये, आपलोगोंका अवश्य कल्याण होगा। मैं आपको उपदेश देनेकी योग्यता नहीं रखता। बस, प्रेमवश इतना निवेदन कर दिया।'

भक्तराजकी नम्रता, निरभिमानता तथा भगवत्प्रेमका सबपर बड़ा गहरा असर पड़ा। सब लोग उनकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर गये और उस दिनसे भगवद्भजनमें अनुराग रखने लगे।

राजा माण्डलीककी भी भक्तराजके प्रति बड़ी श्रद्धा-भक्ति बढ़ गयी। उन्होंने उनका बड़ा सत्कार किया और भजनमण्डलीके साथ एक जुलूस निकालकर उन्हें आदरपूर्वक विदा किया।

उस दिनसे राजाने भक्तराजके घरपर अपनी ओरसे अन्नक्षेत्र जारी कर दिया, जहाँ अनेक क्षुधापीड़ितोंको नित्य भोजन मिलने लगा।

भक्तराज उसके बाद बड़ी शान्तिके साथ जीवन बिताते हुए भगवद्भजन करने लगे और भगवदाज्ञा मानकर लोक-कल्याणकी दृष्टिसे ज्ञानभक्तिपूर्ण पदोंकी रचना करने लगे। उनकी पुत्रवधू जूठीबाई तथा पुत्री कुँवरबाई भी उन्हींके साथ रहती थीं। उन्होंने भी भक्तराजके साथ अपना संयमपूर्ण अन्तिम जीवन भगवद्भजनमें ही बिताया।

इस प्रकार प्राय: पाँच वर्ष और जीवन धारण करनेके बाद भक्तराज इस अशाश्वत भौतिक देहका परित्याग कर सच्चिदानन्द-परमात्मपदको प्राप्त हो गये। पाँच वर्षोंमें उन्होंने हजारों पदोंकी रचना कर डाली। यद्यपि उनका स्थूल शरीर अब हमारे सम्मुख नहीं है तथापि उनकी काव्यमयी कीर्तिकाया आज भी हमें अपने सत्संगका लाभ प्रदान कर रही है। उनके पद संसारसन्तप्त मनुष्योंके कल्याणमार्गपर पहुँचानेमें सदासे सहायता पहुँचाते आ रहे हैं और भविष्यमें भी पहुँचाते रहेंगे।

अन्तमें हम इस भक्तप्रसविनी भारत-भूमिकी वन्दना करते हैं, जिसके क्रोडमें भक्तश्रेष्ठ नरसिंह मेहता-जैसे महापुरुष अवतरित होकर अपनी जगत्पावनी भक्तिके द्वारा समस्त संसारका कल्याण करते हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

नरसीजीके कुछ भजन

(१)

राग प्रभाती

भूतल भक्ति पदारथ मोटुं, ब्रह्मलोक मां नांही रे।
पुण्य करी अमरातुरी पाम्या, अन्ते चौरासी मांही रे॥ टेक॥
हरिना जन तो मुक्ति न मागे, मागे जन्मोजन्म अवतार रे।
नित्य सेवा नित्य कीर्तन ओच्छव, निरखवा नन्दकुमार रे॥ १॥ भूतल०
भरतखंड भूतलमां जनमी जेणे गोविन्दना गुण गाया रे।
धन धन रे एनां मात पिताने, सफल करी ऐने काया रे॥ २॥ भूतल०
धन वृन्दावन धन ए लीला, धन ए ब्रजना वासी रे।
अष्ट महासिद्धि आँगणिये रे ऊभी, मुक्ति छे एमनी दासी रे॥ ३॥ भूतल०
ए रसनो स्वाद शंकर जाणे, के जाणे शुक जोगी रे।
कोई एक जाण व्रजनी गोपी, भणे 'नरसैंयो' भोगी रे॥ ४॥ भूतल०

इस पृथ्वीलोकमें भक्तिरूपी एक महान् पदार्थ है वह ब्रह्मलोकमें नहीं है। जिन्होंने पुण्योंके द्वारा स्वर्ग प्राप्त किया, वे अन्तमें चौरासीके चक्करमें गिर पड़े। हरिके भक्त तो मुक्ति न माँगकर बार-बार जन्म माँगते हैं, जिससे वह नित्य सेवा, नित्य कीर्तन, नित्य उत्सवमें नन्दकुमारको निरखते रहें। इस पृथ्वीमें जिन्होंने भारतखण्डमें जन्म लेकर गोविन्दके गुणोंका गान किया। उनके माता-पिताको धन्य है और उन्होंने अपना जीवन सफल कर लिया। वृन्दावन धन्य है, वे लीलाएँ धन्य हैं, वे ब्रजवासी धन्य हैं, जिनके आँगनमें अष्ट महासिद्धियाँ खड़ी हैं और मुक्ति जिनकी दासी है। उस रसका स्वाद भगवान् श्रीशंकर जानते

हैं, अथवा योगी श्रीशुकदेव जानते हैं। कुछ व्रजकी गोपियाँ जानती हैं, नरसी उस रसको स्वयं भोगकर कह रहा है।

(२)

तू तारा बिरद सांहांमू जोजे शामला, न जोइश करणी हमारी रे।
हिरण्याकशिपुने हाथे हणीयो, मासी पुतना मारी रे।
प्रह्लादकारण स्थंभ मां वशीया, प्रगट्यादेव मोरारी रे॥ तू तारा०॥
लाखाग्रेह मां जेम पांडव उगार्या, ब्रह्माण्ड ज्वाला व्यापी रे।
अर्ध वचने गज गणका तारी, जयदेवने पद्मिनी आपी रे॥ तू तारा०॥
दुष्ट सभा मां जेम चीरज पुर्या, लाज पंचालिनी पाली रे।
तेल कढ़ा जेम शीतल कीधी, बेला सुधन्वानी वाली रे॥ तू तारा०॥
ऋषिश्वरे जेम अहल्या श्रापी, ब्रह्म-सल्या थई भारी रे।
ते पण ताणे चरणे रघुवर, थई अनोपम नारी रे॥ तू तारा०॥
मीरांबाईना बिख अमृत कीधां, विदुरनी आरोग्या भाजी रे।
सवरी ना जेम बोरज प्राश्यां, तेनी प्रीते थया राजी रे॥ तू तारा०॥
अनेक भक्त आगे उगार्या, सहाय थया मोरारी रे।
नरसैंयाचा स्वामी लक्ष्मीवर, मोटी ओथ तमारी रे॥ तू तारा०॥

हे साँवरे! तू अपने विरदकी ओर देखना, हमारी करनीकी ओर नहीं। हिरण्यकशिपुका अपने हाथसे हनन किया, पूतना मौसीको मारा। प्रह्लादके लिये खम्भेमें वास किया और फिर मुरारी प्रभु उसमेंसे प्रकट हो गये। लाक्षागृहमें जब प्रचण्ड अग्नि फैल गयी तब पाण्डवोंको बचाया, आधे नामकी पुकारपर गज और गणिका तारी, जयदेवको पद्मिनी दे दी। दुष्टोंकी सभामें वस्त्र बढ़ाकर

द्रौपदीकी लाज बचायी, सुधन्वाकी उस कठिन समयपर तेलकी कड़ाही ठण्डी करके रक्षा की। ऋषीश्वर गौतमके शापसे अहल्या भारी ब्रह्मशिला हो गयी थी, वह भी हे रघुवर! तेरे चरणोंके स्पर्शसे अनुपम नारी हो गयी। तुमने मीराबाईके लिये विषको अमृत कर दिया, विदुरके साग-पातका भोग लगाया और शबरीकी प्रीतिसे प्रसन्न होकर उसके बेर खा लिये। हे मुरारी! पहले तुमने अनेक भक्तोंकी रक्षा की है और उन्हें सहायता दी है, हे नरसैंयाके स्वामी लक्ष्मीपति! मेरे लिये तो तुम्हारी शरण ही बहुत बड़ी है।

(३)

संसारनो भय निकट न आवे, श्रीकृष्ण गोविन्द गोपाल गातां।
उगर्यो परीक्षित श्रवणे सुणता, ताल वेणा विष्णुना गुण गातां॥ टेक॥
बालक ध्रुव दृढ़ भक्त जाणी, अविचल पदवी आपी।
असुर प्रहलादने उगारी लीधो, जनम जनमनी जड़ता कापी॥ सं०॥
देवना देव तूं कृष्ण आदि देवां, तारू नाम लेतां अभेपद दाता।
ते तारां नामने नरसैंया नित्य जपे, सारकर सारकर विश्वविख्याता॥ सं०॥

श्रीकृष्ण, गोविन्द, गोपाल गानेपर संसारका भय निकट नहीं आता। बिना ही तालके गाये हुए विष्णुके गुण कानोंसे सुनकर परीक्षित् तर गया। बालक ध्रुवको दृढ़ भक्त जानकर आपने अविचल पदवी दे दी। असुर प्रह्लादको बचा लिया और उसकी जन्म-जन्मान्तरोंकी जड़ता काट दी। हे देवोंके देव आदिदेव कृष्ण! तेरा नाम लेनेसे मनुष्य अभयपद देनेवाला बन जाता है, इसलिये नरसी तेरे नामको नित्य जपता है। हे विश्वविख्यात! तू मेरी सँभाल कर, सँभाल कर।

(४)

अखिल ब्रह्माण्डमां एक तूं श्रीहरि, जूजवे रूपे अनन्त भासे।
देहमां देव तूं, तेजमां सत्व तूं, सून्यमां शब्द थई वेद वासे॥ टेक॥
पवन तूं, पाणी तूं, भूमि तूं भूधरा, वृक्ष थई फूली रह्यो आकाशे।
विविध रचना करी, अनेक रस लेवाने, शिवथकी जीव थयो एज आशे॥ अ०॥
वेद तो एम वदै, श्रुतिस्मृति साख दे, कनक कुण्डल विषे भेद न्होये।
घाट घडिया पक्षी, नामरूप जूजवां, अंत्ये तो हेमनुं हेम होये॥ अ०॥
ग्रन्थ गडबड करी, बात न करी खरी, जेहने जे गमे तेने पूजे।
मन कर्म वचनथी आप मानी लहेसत्य छे एज मन एम सूजे॥ अ०॥
वृक्षमां बीज तूं, बीजमां वृक्ष तूं, जोउँ पटतरो एज पासे!।
भणे नरसैंयो ए मन तणी शोधना, प्रीत करं प्रेमथी प्रगट थाशे॥ अ०॥

हे हरि! इस अखिल ब्रह्माण्डमें तू एक होकर भी अनेक रूपोंमें अनन्त-सा प्रतीत हो रहा है। तू देहमें देव है, तेजमें तत्त्व है, शून्यमें शब्दरूप होकर वेदमें प्रकाशित है। तू पवन, पानी, भूमि और भूधर है, तू ही वृक्ष होकर आकाशमें फूल रहा है। अनेक प्रकारकी रचना रचकर, अनेक रस लेनेके लिये तू इसी आशापर शिवसे जीव बन गया है। वेद यों कहते हैं, श्रुति-स्मृतियाँ साक्षी भरती हैं कि कनक और कुण्डलमें भेद नहीं है, गहने गढ़नेपर नामरूप अलग-अलग होते हैं, लेकिन अन्तमें तो सोने-का-सोना ही है। ग्रन्थ गड़बड़ करते हैं, सच्ची बात नहीं कहते हैं, जिसको जो रुचता है उसीको पूजता है। मन-कर्म-वचनसे आत्माको जानकर उसे प्राप्त करना, यही सत्य है, यों मनमें दिखलायी पड़ता है। वृक्षमें बीज तू है, बीजमें वृक्ष तू है, देखता हूँ कि पासमें ही पर्दा पड़ा है। नरसी कहता है कि वह मनकी प्राप्तव्य वस्तु प्रीति करनेसे प्रेमद्वारा प्रकट होगी।

(५)

वास नहि ज्यां वैष्णव केरो, त्यां नव बसिये वासडीयां।
श्वासेश्वास हरि स्मरण न करे जो, श्वास धमण केरी श्वासडीयां॥ वास०॥
जीभलडी जपमाला न जपे तो, जीभलडी नहि खासडीयां।
जनम तेनो नहि लेखामां, जे न कहेवाय हरि दासडीयां॥ वास०॥
मोहनजीनी माया पाखे, अवर माया जम फांसडीयां।
भणे नरसैंयो भारे मरी, मावलडी दश मालडीयां॥ वास०॥

जहाँ वैष्णवका वास नहीं, वहाँ बसना नहीं चाहिये। जो श्वास-प्रतिश्वास हरिका स्मरण नहीं करता है, वह श्वास लोहारकी धौंकनीका श्वास है। जो जीभ जप नहीं करती है वह जीभ नहीं, जूती है। जो हरिका दास नहीं कहलाया उसका जन्म किस गिनतीमें है? मोहन प्यारेके प्रेमके सिवा और सब प्रेम यमराजकी फाँसी है। नरसी कहता है (जो हरिका भक्त नहीं है) उसकी माता दस महीने व्यर्थ ही बोझसे मरी है।

(६)

नारायणनु नामज लेतां, बारे तेने तजिये रे।
मनसा बाचा कर्मणा करीने लक्ष्मीवरने भजिये रे॥ नारायण०॥
कुलने तजिये कुटुम्बने तजिये, तजिये मा ने बाप रे।
भगिनि सुत दाराने तजिये, जेम तजे कंचुकी साप रे॥ नारायण०॥
प्रथम पिता प्रह्लादे तजियो, नव तजियुं हरिनुं नाम रे।
भरत शत्रुघ्ने तजी जनेता, नव तजिया श्रीराम रे॥ नारायण०॥
ऋषिपत्नी सीहरिने काजे, तजिया निज भरथार रे।
तेमां तेनुं कांइये न गयुं, पामी पदारथ चार रे॥ नारायण०॥
बृजवनिता विट्ठलने काजे, सरब तजी वन चाली रे।
भणे नरसैंयो वृन्दावनमां, ते तो घणुं माहली रे॥ नारायण०॥

नारायणका नाम लेते जो रोकता है उसे छोड़ देना चाहिये। मन, वचन और कर्मसे श्रीलक्ष्मीपतिको भजना चाहिये। ऐसे कुल, कुटुम्ब, माता-पिता, बहिन-भाई, पुत्र और स्त्री—सबको इस प्रकार छोड़ देना चाहिये, जैसे सर्प केंचुलीका परित्याग कर देता है। पूर्वमें प्रह्लादने पिताको त्याग दिया लेकिन हरिनाम नहीं छोड़ा, भरत-शत्रुघ्नने अपनी माताको त्याग दिया लेकिन श्रीरामको नहीं छोड़ा। ऋषिपत्नियोंने प्रभुके लिये अपने-अपने पतियोंका त्याग किया लेकिन उसमें उनकी कोई हानि नहीं हुई, उलटे वे चारों पदार्थ पा गयीं। व्रज-वनिताएँ उस विट्ठलके लिये सर्वस्व तजकर वनको चलीं। नरसी कहता है कि इस वृन्दावनमें वह तो बहुत ही अन्तरंग है।

(७)

वारी जाऊँ रे सुन्दर स्याम, तारा लटकाने॥ टेक॥

लटके रघुवर रूप धरीने, वचन पितानां पाल्यां रे।

लटके जई रणे रावण रोल्यो, लटके सीता वाल्यां रे॥ तारा लटकाने॥

लटके गिरि गोवर्धन तोल्यो, लटके वायो, वंश रे।

लटके जई दावानल पीधो, लटके मार्यो कंस रे॥ तारा लटकाने॥

लटके गौओ गोकुलमां चारी, लटके पलवट बारी रे।

लटके जइ जमुनामां पेठा, लटके नाथ्यो काली रे॥ तारा लटकाने॥

लटके वामन रूप धरीने, जाच्या बलीने द्वार रे।

त्रण डगलां पृथ्वीने काजे, बलि चांप्यो पाताल रे॥ तारा लटकाने॥

एवां एवां लटका छे घणां रे, लटकां लाख करोड रे।

नरसैंयांचा स्वामी संगे रमतां, हीडुं मोडामोड रे॥ तारा लटकाने॥

रे सुन्दर श्याम! तेरे लटकेपर मैं वारी जाता हूँ। लटकेसे ही तुमने रघुवररूप धरकर पिताके बचन माने, लटकेसे ही वनमें जाकर रणमें रावणका नाश किया। लटकेसे ही सीताको लौटा दिया। लटकेसे ही गिरि गोवर्धन उठा लिया। लटकेसे ही वंशको समेट लिया। लटकेसे ही दावानल पी गये और इस लटकेसे ही कंसका वध किया। लटकेसे ही गोकुलमें गाएँ चरायीं। लटकेसे ही उनको घर लौटायीं। लटकेसे ही यमुनामें प्रवेश किया और लटकेसे ही कालियनागको नाथ लिया। लटकेसे ही वामनरूप धरकर राजा बलिके द्वारपर याचना की और तीन पैंड पृथ्वीके लिये बलिको पातालमें दबा दिया। ऐसे-ऐसे लटके बहुत हैं। लाखों-करोड़ों हैं, नरसीके स्वामीके साथ खेलते-खेलते हृदय एकतार एकरस हो जाता है।

(८)

वैष्णवजनने विरोध न कोइसुं, जेनां कृष्णचरणे चित्त रह्यां रे।
कावा दावा सर्वे काढ्या, शत्रु हता ते मित्र थया रे॥ टेक॥
कृष्ण उपासी ने जगथी उदासी, फाँसी ते जमनी कापी रे।
स्थावर जंगम ठाम न ठालो, सघले देखे कृष्ण व्यापी रे॥ वैष्णव०॥
कामके क्रोध व्यापे नहि क्यारे, त्रिविध ताप जेना टलिया रे।
ते वैष्णवना दर्शन करिये, जेना ज्ञाने ते वासनिक गलिया रे॥ वैष्णव०॥
निस्पृहीने निर्मल मति वली, कनक कामिनिना त्यागी रे।
श्रीमुखवचनो श्रवणे सुणतां, ते वैष्णव बड़भागी रे॥ वैष्णव०॥
एवा मले तो भवदुःख टले, जेनां सुधा समान वचन रे।
नरसैंया स्वामीने निशदिन व्हाला, एवा ते वैष्णवजन रे॥ वैष्णव०॥

जिसका चित्त श्रीकृष्णके चरणोंमें लग गया उस वैष्णवजनका किसीसे विरोध नहीं है, उसने सब ऐब-फ़रेबोंको भगा दिया। जो शत्रु थे, वे मित्र बन गये। वह श्रीकृष्णकी उपासना करता है, जगत्से उदासीन है। यमराजकी फाँसीको काट चुका है। स्थावर, जंगम, कोई स्थान खाली नहीं है, सर्वत्र श्रीकृष्णको व्यापक देखता है। जिसके त्रिविध ताप मिट चुके हैं, उसके मनमें काम-क्रोध कभी नहीं आते। जिसके ज्ञानसे वासनाका कारण नष्ट हो गया उस वैष्णवके हम दर्शन करते हैं। वह निःस्पृही निर्मलमति कनक-कामिनीका त्यागी है! उसके श्रीमुख-वचनोंको जो कानोंसे सुनता है, वह बड़भागी वैष्णव है। जिनके सुधासमान वचन हैं ऐसे वैष्णव यदि मिल जायँ तो सारे भव-दुःख टल जायँ। नरसीके स्वामीको ऐसे वैष्णवजन रात-दिन प्यारे हैं।

(९)

गाए गोपी गोविन्दना गुण, उलट अंग न माए रे।
राव मशे ते शामिलियानुं, मुखडुं जोवा जाए रे॥ टेक॥
दूध दही आगल करी राखे, मांखण साकर मांहे रे।
घरनाँ दबार उघाडां मूके, जो आवे ते खाए रे॥ गाए०॥
धन धन गोकुल धन धन गोपी, कृष्णना गुण भावे रे।
निशदिन ध्यान धरे मन हरीनुं, इम जाणे घेर आवे रे॥ गाए०॥
जेनुं ध्यान धरे महा मुनीजन, ते स्वपते ना देखे रे।
ते शामलिओ प्रगट थइने, प्रेमदा प्रेमे पेखे रे॥ गाए०॥
यज्ञ करे त्यांहां प्रगट न थाए, ते गोपीना घर मांहे रे।
भणे नरसैंयो गोरस गमतु, माखण चोरी खाए रे॥ गाए०॥

गोविन्दके गुण गाती-गाती गोपी अंगमें फूली नहीं समाती है। छाछके बहानेसे वह साँवरियेका मुखड़ा देखने जाया करती है। घरके दरवाजे खुले छोड़ देती है और दूध, दही, मक्खन, मिश्री आगे करके रख देती है, इस इच्छासे कि वह (श्यामसुन्दर) आवे और खा जाय! गोकुल धन्य है, गोपियाँ धन्य हैं जिनको कृष्णके गुण भाते हैं। रात-दिन मनसे हरिका ध्यान धरती हुई यों मनाया करती हैं कि वह हमारे घर आवे। जिस साँवरेका महामुनिजन ध्यान धरते हैं; परन्तु स्वप्नमें भी जिसे नहीं देख पाते, वही साँवरा प्रकट होकर उन स्त्रियोंको प्रेमसे देखता है। जो यज्ञ करनेपर भी प्रकट नहीं होता वह गोपियोंके घरमें रहता है। नरसी कहता है कि उसे (प्रेमका) गोरस प्यारा है; इसलिये वह चोरी करके मक्खन खाया करता है।

(१०)

संतो हमे रे वेवारिया श्रीरामनामना।
वेपारी आवे छे बधा गाम गामना॥ टेक ॥
हमारूँ बसाणुं साधु सऊको ने भावे।
अढारे वरण जेने होरवाने आवे॥ संतो० ॥
हमारूं बसाणुं काल दुकालें न खूंटे।
जेने राजा न दंडे जेने चोर ना लूंटे॥ संतो० ॥
लाख बिनाना लेखा नहिं, ने पार बिनानी पूंजी।
होरवुं होय तो होरी लेजो, कस्तूरी छे सोंधी॥ संतो० ॥
रामनाम धन हमारे, बाजे ने गाजे।
छप्पन ऊपर भेर भेरि, भूंगल बाजे॥ संतो० ॥
आवरो ने खाताबहीमां, लक्ष्मीवरनुं नाम।
चीठी मां चतुरभुज लखिया, नरसैयानुं काम॥ संतो० ॥

संतो! हम तो रामनामके व्यवसायी हैं। हमारे यहाँ सब गाँवोंके व्यापारी आया करते हैं। हमारा माल हे साधु! सबको अच्छा लगता है, अठारहों वर्ण (जाति)-के लोग उसे लेने आते हैं। हमारा माल दुर्भिक्ष पड़नेपर भी नहीं खतम होता। उसे न राजा दण्डमें लेता है और न चोर ही लूटता है। लाखोंसे कमका हिसाब-किताब नहीं है और मूलधन तो अपार है। लेना हो तो ले लो, कस्तूरी बहुत सस्ती मिल रही है। हमारे तो रामनाम ही धन है, डंकेकी चोट कहते हैं। छप्पनपर भेरी आदि बाजे बज रहे हैं। बहीखातोंमें लक्ष्मीवरका नाम और चिट्ठीमें चतुर्भुज लिखा जाता है, यही नरसीका काम है।

(११)

वैष्णवजनने विषयथी तलवुं, हलवुं माँहोथी मन रे।
इन्द्रिय कोई अपवाद करे नहीं, तेने कहिये वैष्णवजन रे॥ टेक॥
कृष्ण कृष्ण कहेतां कण्ठज सूके, तो थे न मूके, निजनाम रे।
श्वासोश्वोसे समरे श्रीहरि, मन न व्यापे काम रे॥ वैष्णव०॥
अंतरवृत्ति अखण्ड राखे हरिसुं, धरे कृष्णनुं ध्यान रे।
व्रजवासिनी लीला उपासे, बीजुं सुणे नहिं कान रे॥ वैष्णव०॥
जगसुं तोडे ने जोडे प्रभुसुं, जगसुं जोडे प्रभुसुं त्रुटी रे।
लेने कोई वैष्णव नव कहेशो, जमड़ा लई जाशे कुटी रे॥ वैष्णव०॥
कृष्ण बिना कोई अन्य न देखे, जेनी वृत्ति छे कृष्णाकार रे।
वैष्णव काहावे ने विषय न जावे, तेने बार बार धिक्कार रे॥ वैष्णव०॥
वैष्णवने तो वल्लभ लागशे, कुडियाने कागशे काचुं रे।
नरसैंयाचा स्वामीने लंपट नहिं गमे, शोभशे साचुं रे॥ वैष्णव०॥

वैष्णवजनको विषयोंसे बचना और मनको निर्मल रखना चाहिये। जिसकी इन्द्रियाँ दुराचारसे रहित हैं उसे ही वैष्णवजन

कहा जाता है। 'कृष्ण-कृष्ण' कहते-कहते कण्ठ सूख जानेपर भी जो नामका परित्याग नहीं करता, श्वास-श्वासमें श्रीहरिका स्मरण करता है, जिसके मनमें काम नहीं व्यापता, जो अखण्डरूपसे हरिमें अन्तर्वृत्ति रखता हुआ श्रीकृष्णका ध्यान करता है, व्रजवासी श्यामकी लीलाओंकी उपासना करता है, दूसरी बात कानोंसे सुनता ही नहीं और जगत्‌से मन हटाकर प्रभुसे जोड़ देता है। जो जगत्‌से जोड़ता है और प्रभुसे तोड़ता है उसे कोई वैष्णव न कहें, उसे तो यमदूत पीटते हुए ले जायँगे। जो कृष्णके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं देखता, जिसकी वृत्ति कृष्णाकार हो रही है, वही वैष्णव है, परन्तु जो वैष्णव कहलाता है और जिसके विषय निवृत्त नहीं हुए हैं उसको बारम्बार धिक्कार है। यह बात वैष्णवोंको तो प्रिय लगेगी, कपटियोंको बुरी लगेगी। नरसीके स्वामीको लम्पट अच्छा नहीं लगता, वहाँ तो सच्चेकी ही शोभा होगी।

(१२)

हे आज सखी रे श्रीवृन्दावनमां, मधराते मोरली वागी रे।
सुणतां रे चीत हर्यां मारी सजनी, भर निद्रामां थी हुं जागी रे॥ टेक॥
हे जाग्रत स्वप्न सषुपति तुरीया, ऊनमीए ताली लागी रे।
त्रिगुण रहीत थयुं मन मारूँ, कामवासना तांहां भागी रे॥ हे० ॥
ई जम-जम द्रष्ट पड़े मारी सजनी, तम-तम ताणी मोहती रे।
नरसैंयाचा स्वामीनी लीला, हरखे हीडु हूँ जोती-जोती रे॥ हे० ॥

हे सखी! आज श्रीवृन्दावनमें मध्य रातको मुरली बजी, उसे सुनते ही हे सजनी! मेरा चित्त हरा गया। मैं भरी निद्रासे जाग उठी। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय—सब अवस्थाएँ उन्मनीमें पहुँच गयीं और मेरा मन त्रिगुणरहित हो गया। वहाँसे कामवासना भाग गयी। हे सखी! ज्यों-

ज्यों वह मेरी दृष्टि पड़ता गया त्यों-ही-त्यों उसके लिये मैं मोहित होती गयी, नरसीके स्वामीकी लीलाको देख-देखकर हर्षसे हृदय भर रहा है।

(१३)

कृष्ण कहो कृष्ण कहो, आ अवसर छे 'के' वानुं।
पाणीतो सर्वे बरसी जाशे, रामनाम छे 'रे' वानुं॥ टेक॥
रावण सरखा झट चाल्या, अन्तकालनी आंटी मां।
पलकवार मां पकड़ी लीधा, जाणो जनमी घांटी मां॥ कृष्ण०॥
लखेसरी लाखो लुटाया, काले ते नाख्या कूटीने।
क्रोडपतिनूं जोर न चाल्युं ते नर गया उठीने॥ कृष्ण०॥
ए कहेवानुं सौने कहिये, निशदिन ताली लागी रे।
कहे नरसैंयो भजतां प्रभुने, भवनी भावट भागी रे॥ कृष्ण०॥

कृष्ण कहो, कृष्ण कहो—यह कहनेका मौका मिला है, जल तो सारा बरस ही जायगा, केवल रामनाम ही रहनेवाला है। रावण-जैसोंका पलक मारते यमराजने पकड़ लिया और वे झटसे कालके लपेटमें आ गये। लाखों लखपतियोंको कालने कूट डाला और वे लूट लिये गये। करोड़पतियोंका कोई जोर नहीं चला और उन्हें यहाँसे उठकर जाना पड़ा। यही बात कहनेकी है जो सबसे कही जा रही है। नरसी कहता है कि रात-दिन मन लगाकर प्रभुको भजनेसे इस भव (संसार)-के आवागमनसे इसे छुट्टी मिल गयी है।

(१४)

हरि हरि रटण कर, कटण कलिकाल मां,
दाम बेसे नहिं काम सरसे।
भक्त आधीन छे, श्यामसुन्दर सदा,
ते तारां कारज सिद्ध करशे॥ टेक॥

सुखसारुं शुं, मूड फूल्यो फरे,
शीशपर काल रह्यो दंत करडे।
पामर पलकनी, खबर तुजने नहीं,
मूढ शुं जोइने मूंछ मरडे॥ हरि०॥
प्रौढ पापे करी, बुद्धि पाछी फरी,
परहरी थड शुं डाले वलग्यो।
ईशने ईर्षा छे नहीं जीवनपर,
आपणे अवगुणे रह्यो रे अलगो॥ हरि०॥
परपंच परहरो, सार हृदिये धरो,
उचरो, हरि मुखे अचल बाणी।
नरसैंया हरितणी भक्ति भूलीश मां
भक्ति बिना बीजुं धूलधाणी॥ हरि०॥

इस कठिन कलिकालमें हरि-हरि रटो, इसमें कुछ भी खर्च नहीं होगा और कामसिद्ध हो जायगा। श्यामसुन्दर सदा ही भक्ताधीन है, वही तुम्हारा कार्य सिद्ध करेगा। थोड़े-से सुखके लिये हे मूढ़! क्या फूला फिरता है, सिरपर काल दाँत कटकटाता हुआ घूम रहा है। हे पामर! तुझे एक पलकका भी तो पता नहीं है, मूढ़! क्या देखकर मूँछें मरोड़ रहा है? भारी पापोंके कारण बुद्धि विपरीत हो गयी, तू मूलको छोड़कर डालीसे चिपट गया। ईश्वरको जीवोंपर ईर्ष्या नहीं है, अपने ही अवगुणोंसे तू अलग हो रहा है। अब प्रपंच छोड़कर सार वस्तु हृदयमें धारण कर और मुखसे हरिनामकी अचल वाणीका उच्चारण कर। नरसी कहता है कि हरिकी भक्ति मत भूल। भक्तिके सिवा और सभी कुछ धूल-धानी ही है।

(१५)

कृष्णजी कृष्णजी कृष्णजी कहेतां उठो रे प्राणी।
कृष्णजी ना नाम बिना जे बालो तो मिथ्या वाणी रे॥ टेक॥
कृष्णजी ए वास्युं रुडुं गोकुलीऊं रे गाम।
कृष्णजी एक पूरी, मारा मनडा केरी हाम॥ कृष्णजी०॥
कृष्णजी ए अहिल्या तारी, गुणका ओधारी।
कृष्णजी ना नाम ऊपर, जाऊँ बलिहारी॥ कृष्णजी०॥
कृष्णजी माता, कृष्णजी पिता, कृष्ण सहोदर भाई।
अन्तकाले जाबुं एकलडा, साथे श्रीकृष्णजी सगाई॥ कृष्णजी०॥
कृष्णजी कृष्णजी कहेतां, कृष्ण सरीखा थाशो।
भणे रे नरसैंयो सेहेजे, तमे वैकुण्ठे जाशो॥ कृष्णजी०॥

हे प्राणी! कृष्णजी, कृष्णजी, कृष्णजी कहते हुए उठो। कृष्णजीके नामके अतिरिक्त जो कुछ बोलते हो, सब मिथ्या वाणी है। श्रीकृष्णजीने सुन्दर गोकुल गाँवमें वास किया और मेरे मनकी आशाएँ पूरी कीं। श्रीकृष्णजीने अहल्या तारी, गणिकाका उद्धार किया, मैं श्रीकृष्णजीके नामपर बलिहारी जाता हूँ। कृष्णजी मेरे माता, पिता और सहोदर भाई हैं। अन्तकालमें अकेले ही जाना है, केवल श्रीकृष्ण ही साथ होंगे। कृष्णजी, कृष्णजी कहते-कहते कृष्ण-जैसे हो जाओगे और नरसैया कहता है कि सहज ही वैकुण्ठको प्रयाण कर सकोगे।